50 वर्षों से प्रकाशित

कौल-कल्पतरु

चण्डी

साधन-माला

श्रीनृसिंह-कवच एवं श्रीकार्तवीर्यार्जुन मन्त्र-प्रयोग (सविधि)

'राष्ट्र-गुरु' परम पूज्य स्वामी जी

साधनोपयोगी श्रेष्ठ पुस्तकें

पूजा-रहस्य

हिन्दुओं की पूजा का विवरण

मूल्य १५-०० रु०

सचित्र
मुद्राएँ एवम् उपचार

हिन्दुओं की पूजा में प्रयुक्त होनेवाली मुद्राओं एवं पूजोपचार (आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा) का प्रामाणिक वर्णन ।

मूल्य १५-०० रु०

सविधि
श्री कुण्डलिनी साधना

षट्-चक्रों एवं कुण्डलिनी-योग का विवेचन

मूल्य १५-०० रु०

सविधि
दश-महाविद्या स्तोत्र-संग्रह

भ० काली, भ० तारा, श्री श्रीविद्या, श्रीभुवनेश्वरी आदि महा-विद्याओं के स्तोत्रों के संग्रह

प्राप्ति-स्थान : कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—२११००६

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग—२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ५

वार्षिक शुल्क : रु० ५५
आजीवन शुल्क : रु० ५५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक/समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ५००/३००
आजीवन : ५०००/३०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट से कार्यालय के पते पर भेजें

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग—२११००६

हिन्दू - धर्म के ज्ञान - मय क्रिया-पक्ष
की
'राष्ट्र-भाषा' में शोध-पूर्ण प्रस्तुति

कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ५१ अङ्क २
'पार्थिव' सम्वत्, २०४६ वि० वैशाख, २०४६ वि० मई, १९९२

इस अंक में

- श्रीराम-गीता ... ३४
- हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा ... ३५
- प्रतिमा, मूर्त्ति के दर्शन से लाभ ... ३८
- श्रीप्रभु ... ४०
- 'राष्ट्र-गुरु' परम पूज्य स्वामी जी महाराज की पुण्य-तिथि के अवसर पर ... ४१

* पावन संस्मरण *

- साधन-माला (गताङ्क से आगे) ... ४९
- ॐश्री काल्यै नमः ... ६४

श्रीराम गीता

॥ चौपाई ॥

कर्म किए फल कर्मंहि होई । ताते फिर उपजत भव सोई
ताते कर्म काम सह त्यागी । ज्ञानी रहत ज्ञान अनुरागी

॥ दोहा ॥

पै प्रतिवादी[1] यह कहत, कर्म सनातन आय ।
सकल अङ्ग मिलि ज्ञान की, करत अवश्य सहाय ॥
कोउ वितर्कवादी[2] कहत, ज्ञान कर्म मिलि दोउ ।
होत मुक्ति के हेतु पर, जानहु सत्य न सोउ ॥

॥ चौपाई ॥

कर्म किए चित्त शुद्ध महाना । चित्त शुद्ध भए उपजत ज्ञाना
किन्तु ज्ञान-फल मोक्ष जो होई । कर्म अपेक्षा[3] करत न सोई
विद्या ज्ञान कर्म अज्ञाना । दुहूँ मिलि मुक्ति न सिद्ध बखाना
ताते सुमुनि कर्म परिहरहीं । चित्त-शुद्धि लगि नित-कृत करहीं
तेहि पीछे सब कर्म विहाई । इन्द्रिन्ह विषयन्ह सन विलगाई
आत्महि परम प्राप्त धन जानी । तेहि विज्ञान मगन रह ज्ञानी
जब लगि प्रकृति अविद्या द्वारा । जिव अनात्म महँकर अहँकारा
तब लगि सविधि कर्म नित करई । अहं बुद्धि रस-रस परिहरई
पुनि श्रुति महा-वाक्य के द्वारा । गुनि अनित्य जाने संसारा
यहि जग ते पर सत्य स्वरूपा । परमात्मा अनाम अरूपा
यह दृढ़ जानि मगन जब होई । तब सब कर्म तजै अपि सोई
जब चित्त शुद्ध भए परज्ञाना । होइ उदय हिय-भानु समाना
तव भव-भूल-भेद भ्रमराती । मिटहिं जनम-प्रद कर्म अराती[4]
जबहिं अविद्या निशा नसाई । तब भव-कर्म सपन भ्रम जाई
जिमि दुइ चन्द दिशा-भ्रम होई । चित-भ्रम मिटे निवृत सो होई
तिमि परमात्मा जीव-युग-भेदा । भ्रम के मिटे मिटत चित-खेदा
जब लगि यहि विधि बोध न लहई । सब जग प्रकट हमहिं सन अहई
तब लगि श्रद्धा-भाव समेता । मम आराधन करै सचेता
अन्तःकरण शुद्ध करि लैहौ । सदा हृदय मम दर्शन पैहौ

॥ दोहा ॥

हम पापी हम पुण्य-कृत, यह आत्मा बुधि नाहिं ।
अज्ञानिन्ह के कर्म गुनि, ज्ञानी त्यागत ताहि ॥

१ प्रतिवादी = उत्तर देनेवाला, २ वितर्कवादी = शङ्का करनेवाला, ३ अपेक्षा = चाह, ४ अराती = शत्रु ।

हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा

'कुल-भास्कर' पं. गोविन्द शास्त्री दुगवेकर

हिन्दुओं पर यह आरोप कर, उनकी खिल्ली उड़ाई जाती है कि वे **'मूर्ति-पूजक'** हैं, परन्तु यह आरोप ही निर्मूल है। वास्तव में हिन्दू, **'मूर्ति-पूजक'** नहीं हैं, अपितु वे **मूर्ति को माध्यम बनाकर उसमें श्री भगवान् की सर्व-व्यापिनी शक्ति की पूजा करते हैं।** यदि हिन्दुओं को **'मूर्ति-पूजक'** कहने से मन भरता हो, तो इस आरोप से मुसलमान या ईसाई भी नहीं बच सकते क्योंकि वे भी **'तकिया - ताजिया'** तथा **'क्रास'** की पूजा करते हैं, चाहे उनकी पूजा - पद्धति हिन्दुओं से भिन्न ही क्यों न हो। **प्रतिमा या प्रतीक** बनाकर, उसमें हिन्दु लोग जो श्री भगवान् की उपासना करते हैं, इसमें गहन विज्ञान भरा हुआ है, जहाँ तक विश्व के अन्य धर्मावलम्बियों की पहुँच नहीं हो सकी है। वास्तव में **'मूर्ति-पूजा'** प्रख्यात **'मन्त्र-योग'** **का प्रधान अङ्ग है।**

यह समस्त दृश्य जगत् **'भाव'** का ही विकास मात्र है। परमात्मा से **'भाव'** की उत्पत्ति होती है और 'भाव' से **'नाम-रूप'** की। यही उनकी उपाधि है, जो **'माया'** कहलाती है। यह संसार इसी **'माया का विलास'** है। इस **'सृष्टि-क्रम'** के विपरीत **'लय-क्रम'** का होना स्वाभाविक है। जब जीव, परमात्मा के भाव से उत्पन्न **'नाम-रूप'** के बन्धन में पड़ जाता है, तब उससे मुक्त होने के लिए प्रथम नाम-रूप का आश्रय लेकर **'भाव'** में और फिर 'भाव' से **भाव-ग्राही श्री भगवान्** में अपनी **चित्त-वृत्ति को लय** कर देना होगा। 'नाम' और 'रूप' के अवलम्बन से जो 'साधना की विधि' बताई गई है, उसे **'मन्त्र-योग'** कहते हैं। सृष्टि, **'नाम-रूपात्मक'** है। अतः साधक, 'नाम-रूप' के अवलम्बन से ही सृष्टि के बन्धन से छूट-कर मुक्त हो सकता है। मनुष्य पैर फिसल कर जिस भूमि पर गिरता है, उसी भूमि का सहारा लेकर उठता भी है। **'नाम-रूपात्मक' विषय,** जीव को **'बद्ध'** करते हैं। अविद्या के कारण 'नाम - रूपात्मक प्रकृति-वैभव', जीव को ग्रास किए रहते हैं।

अतः अपनी-अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार **'नाम-मय-शब्द'** और **'भाव - मय - रूप'** के अवलम्बन से जो **'योग-साधन'** किया जाता है, वही **'मन्त्र-योग'** है। जो त्रिकाल-दर्शी महर्षि नित्यानित्य

वस्तु का विवेक करने में समर्थ हो सके, क्या वे इतना नहीं समझ सके थे कि **काष्ठ-पाषाण की मूर्ति श्री भगवान् नहीं हैं?** उन्होंने तो स्पष्ट लिख रक्खा है कि काष्ठ, पाषाण या मृत्तिका में नहीं, किन्तु भगवान् **'भाव'** में ही विराजते हैं।

अतः भगवत्-प्राप्ति के लिए **'भाव'** ही कारण है। जो चिन्मय है, गुणातीत है, शरीर-रहित है और नापा-जोखा नहीं जा सकता, उसके रूप की कल्पना केवल साधकों के कल्याण के लिए की जाती है। अथर्व, साम, ऋग्वेद और दर्शन-शास्त्र में **'प्रतिमा'-पूजा** का समर्थन इसी कारण किया गया है।

भक्तों के 'भाव' के अनुसार प्रतिमाएँ आठ प्रकार की होती हैं—१ पाषाण (पत्थर) की, २ लकड़ी की, ३ लोहे की (धातुओं की), ४ मिट्टी के गारे की, ५ तूली से लिखी गई, ६ बालू की, ७ मणियों (रत्नों) की और ८ अन्तः-करण में कल्पित।

मनुष्य, भावों का दास है। भाव-शून्य होकर, मनुष्य का अन्तःकरण एक क्षण भी स्थिर नहीं रह सकता। **'सनातन-धर्म' में 'भाव-शुद्धि'** का ही विशेष प्राधान्य है। भावानुसार असत् कार्य 'सत्' और सत् कार्य 'असत्' हो जाता है। किसी की हत्या करना, 'असत् कार्य' है, परन्तु धर्म-युद्ध या साधु-जन की रक्षा करने में जो हत्या की जाती है, वह सत्कार्य ही माना जाता है। इसी तरह अभय - दान सत्कार्य है, परन्तु पापी पुरुष के पापों को जान कर भी यदि उसे आश्रय दिया जाय, तो वह असत्कार्य समझा जायगा।

विषय का इन्द्रियों से सम्बन्ध होने पर अन्तःकरण की वृत्ति के मूल में जो 'भाव' होता है, वह प्रकट हो जाता है, चाहे वह सत् हो या असत्। भावानुसार, सदसत्फल भी होता है। उदाहरणार्थ, स्त्री-रूप विषय को प्रथम दर्शनेन्द्रिय ने देखा, जिससे अन्तः-करण में नाना वृत्तियों का उदय हो गया। यदि देखनेवाले का भाव मलिन है, तो वह उस स्त्री-रूप विषय को इन्द्रिय - भोग्य मानेगा और यदि उसके अन्तः-करण का भाव शुद्ध हो, तो उसको मातृ-रूप में अथवा श्रीजगदम्बा की प्रति-कृति के रूप में देखने में समर्थ होगा। माता, पत्नी, भगिनी, दुहिता सभी तो स्त्री-जाति हैं, परन्तु भावानुसार ही मनुष्य उनसे सम्बन्ध-स्थापन कर लौकिक व्यवहार करता है। इसी से **'सनातन - धर्म' में भाव - शुद्धि के अनेक उपाय** बताए गए हैं। वही **'मन्त्र-योग'** है।

सर्व-व्यापक निर्गुण, निराकार ब्रह्म—इन्द्रियों, मन और बुद्धि से परे है। उसकी उपासना सब किसी से नहीं हो पाती। अतः साधकों के सुभीते के लिए **सगुणोपासना** प्रवर्त्तित हुई। चञ्चल मन स्वभावतः बिना आधार के कहीं ठहर नहीं सकता और चित्त-वृत्तियों का निरोध किए बिना **'चित्त-शुद्धि'** हो नहीं सकती। **'चित्त-शुद्धि'** के बिना **परमात्मा का साक्षात्कार** सम्भव नहीं। **चित्त को स्थिर करने का सुगम उपाय है—प्रतिमा-पूजा।**

मनुष्य अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार कोई मूर्ति पसन्द कर लेता है और उसी की उपासना करता हुआ सर्व-व्यापिनी भगवत्-सत्ता का अनुभव कर अन्त में अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है। 'गीता' में कहा है—'देहाभिमानी साधक के लिए, देह-रहित **अव्यक्त की प्राप्ति** बहुत क्लेश से होती है क्योंकि जब तक **देहाभिमान** है, तब तक कोई निराकार की भावना कर नहीं सकता।'

अतः एक सामान्य साधक को सबसे पहले परमात्मा की किसी भाव-मयी साकार मूर्ति में चित्त जमाना चाहिए। साकार की उपासना तभी तक के लिए बताई गई है, जब तक साधक का **देहाभिमान** दूर न हो और उसमें **वैराग्य** तथा **इन्द्रिय-संयम की शक्ति** न आ जाय। गोस्वामी जी ने ठीक ही कहा है—

"तुलसी प्रतिमा पूजिबो, ज्यों गुड़िया को खेल। भेट भई जब पीय सों, दई टिपरिया मेल ॥"

सगुण-निर्गुणोपासना के विचार का हिन्दुओं के शास्त्रों में बड़ा विस्तार है। यहाँ तो हमें केवल यही बताना है कि हिन्दू-जाति काष्ठ-पाषाणादि को नहीं पूजती; अपितु मृत्तिका, पाषाण आदि के उपादानों से शास्त्रानुसार मूर्ति बनाकर, उसके द्वारा परमात्मा की सर्व-व्यापिनी दिव्य-शक्ति को प्रकट कर, उसमें 'भाव' और 'शक्ति' की पूजा करती है।

'प्रतिमा' अथवा 'मूर्ति' में भगवच्छक्ति किस प्रकार प्रकट होती है, इसके सम्बन्ध में 'कुलार्णव तन्त्र' में लिखा है—'जिस प्रकार गोमाता के समस्त शरीर में दुध व्याप्त रहने पर भी दूध स्तनों के द्वारा ही क्षरित होता है, उसी प्रकार परमात्मा की शक्ति सर्वत्र व्याप्त रहने पर भी, वह 'प्रतिमा' के माध्यम के द्वारा प्रकट होती है।' इसी 'तन्त्र' में 'प्रतिमा' अथवा मूर्ति के द्वारा दिव्य शक्ति के प्रकट करने के उपाय निम्न प्रकार बताए गए हैं—'शास्त्रोक्त ध्यान और भाव के अनुसार मूर्ति का निर्माण होने, विधि के अनुसार पूजा होने और प्रतिमा में साधक की पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास होने से 'दैवी'-शक्ति का विकास होता है।'

यह बात व्यावहारिक उदाहरणों से भी समझ में आ सकती है। वैद्युतिक शक्ति के विकास के सम्बन्ध में विज्ञान - शास्त्र का यह नियम है कि ऋणात्मक - शक्ति (निगेटिव एलेक्ट्रीसिटी), धनात्मक (पाजिटिव एलेक्ट्रिसिटी) का और धनात्मक-शक्ति, ऋणात्मक-शक्ति का आकर्षण करके 'वैद्युतिक'-शक्ति का विकास कर देती है। इसी तरह 'दैवी'-राज्य में **'श्रद्धा'** और **'विश्वास'** की ऋणात्मक 'दैवी'-शक्ति, परमात्मा की धनात्मक 'दैवी'-शक्ति को प्रतिमा या मूर्ति के माध्यम द्वारा प्रकट कर देती है।

दूसरा उदाहरण यह है कि साधारण काँच में सूर्य की किरणें पड़ने पर भी उसमें 'दाहिका'-शक्ति उत्पन्न नहीं होती, किन्तु वही काँच जब आतशी काँच बन जाता है, तब सूर्य की किरणों से तापो के आकर्षण की इतनी शक्ति उसमें आ जाती है कि चाहे जिस वस्तु को वह जला सकता है। इसी तरह यद्यपि मृत्तिका, पाषाणादि में भगवच्छक्ति प्रकट होने की सामर्थ्य नहीं है, तथापि भावानुसार जब पाषाणादि की मूर्ति बनाई जाती है, तथा श्रद्धा-भक्ति और विश्वास के साथ अपनी 'प्राण-शक्ति' उसमें संयत की जाती है, तब उसके द्वारा परमात्मा की दिव्य शक्ति, भक्त के कल्याण के लिए आप ही प्रकट ह जाती है।

इस प्रकार अपनी 'प्रकृति' और 'प्रवृत्ति' के अनुकूल भावानुसार निर्मित, स्थापित और पूजित 'दिव्य-मूर्ति' में, दिव्य मन्त्रों के साथ चित्त को अर्पण करके, उपासना—ध्यान, धारणा आदि के द्वारा, साधक का चित्त धीरे-धीरे सांसारिक नाम-रूपादि विषयों से हट कर, भगवच्चरणारविन्दों में लीन हो जाता है। फिर ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी नहीं रहती। भक्त की यह तन्मयावस्था है। तन्मय भक्त के एकाग्र चित्त में, यदि भाव-ग्राही श्री भगवान् के भावानुसार प्रकट रूप के दर्शनार्थ तीव्र लालसा और सम्वेग उत्पन्न हो, तो सर्व-शक्ति-मान् भगवान् स्थूल मूर्ति धारण कर भक्त को दर्शन भी दिया करते हैं। जैसा कि, श्रीमद्-भागवत में लिखा है—

"हे नाथ! तुम भाव-योग के द्वारा परिभावित होकर भक्तों के हृदय-कमलों में अपनी मधुर मूर्ति को प्रकाशित करते हो और जिन-जिन भावों से भक्त तुम्हारी भावना करते हैं, उन्हीं भावों के अनुसार मूर्ति धारण करके कृपा-पूर्वक तुम भक्त को दर्शन दिया करते हो।"

* * *

प्रतिमा, मूर्त्ति के दर्शन से लाभ

पण्डित लल्लनप्रसाद पाण्डेय

भारत-वर्ष **'धर्म'-प्रधान** देश है। चाहे जितने भी इस देश में 'वाद' आएँ, जैसी भी राज-नीति और राजे-महराजे आएँ, लेकिन इस देश की जड़ में जो धार्मिकता नैसर्गिक रूप से बैठी हुई है, उसे कोई उखाड़ फेंकने में समर्थ नहीं होगा। यही कारण है कि किसी भी **भारतीय पर्व** या **महोत्सव** में धार्मिक जनों की भीड़ लग ही जाती है। **'धर्म'-तत्त्व** नैसर्गिक रूप से ग्रहण होने के कारण हमारे यहाँ **'धर्म'** का नाम किसी व्यक्ति-विशेष के नाम पर नहीं रखा गया अपितु इसका नाम **'सनातन धर्म'** रखा गया। **'सनातन धर्म'** का अर्थ है, जो सदा से चला आ रहा है।

दुर्गा, काली, सरस्वती आदि देवियों और **राम, कृष्ण, महावीर** आदि की प्रतिमाओं का जो इस देश में पूजन होता है, वही पूजन है, जो इस देश में सदा से चला आ रहा है। अथवा अत्यन्त प्राचीन काल से हमारे यहाँ लोग इनका **पूजन, ध्यान, मनन** और **चिन्तन** करते आए हैं। भक्त इन्हीं **इष्ट-देव** को **ध्यान में, हृदय में** और **मन में** बैठाए रहते हैं।

इष्ट-देवों के विभिन्न रूपों को, जिन्हें भक्त लोग हृदय में ध्यान करते हैं, उन्हें सर्वत्र दिखाने के लिए, प्रकट करने के लिए कागज पर—पत्थर पर चित्र बनाकर भी दिखाया जाता है। अपने हृदयस्थ इष्ट-देव को मूर्ति के रूप में कागज पर उतार देते हैं, अथवा पत्थर पर उत्कीर्ण कर देते हैं। वास्तविकता यह है कि भक्त अपने हृदयस्थ **इष्ट-देव** को जहाँ चाहता है, मिट्टी पर, सोने पर, चाँदी पर, पीतल और ताँबे पर उतार देता है। उतार ही नहीं देता, इन पार्थिव पदार्थों पर अपने **इष्ट-देव** को अवतरित कर **षोडशोपचार-पूजन** कर सन्तुष्ट होता है। इसीलिए मैथिलीशरण जी अपनी **'भारत-भारती'** में कहते हैं—

होता न मूर्ति-विधान यदि साधन हमारे देश का,
पूजन न षोडश विधि यहाँ होता सगुण सर्वेश का।
अनुभव न होता एक सीमा में असीमाधार का,
होता निदर्शन भी न उस हृदयस्थ रूपोद्गार का ।।
निज रूप से भी दूसरे जन जिस समय अज्ञान थे—
हम उस समय प्रभु-मूर्ति का प्रत्यक्ष करते ध्यान थे।
ऐसा न करते तो भला हम भक्ति प्रकटाते कहाँ ?
दर्शन-विलम्बाकुल दृगों को हाय ! ले जाते कहाँ ?

भारत-वर्ष के **धर्म-प्रधान देश** होने के कारण यहाँ के निवासी भक्त तो स्वाभाविक रूप से होते थे, साथ ही उनकी जीविका का एक साधन **मूर्ति-निर्माण** भी था। देश का प्रत्येक व्यक्ति मूर्ति तो नहीं बना सकता था, किन्तु पूजन प्रत्येक व्यक्ति करता था। इसलिए वह अपने हृदयस्थ **इष्ट-देव की प्रतिमा** बनवाकर मूर्तिकारों से खरीदता और पूजन करता था। आज भी प्रायः ऐसा ही होता है। भक्त की यह

विशेषता होती थी कि वह अपने असीम आधारवाले **इष्ट-देव** को एक सीमित मूर्ति में लाकर रख देता और पूजन करता था। साथ ही अपने हृदय में बैठे हुए **इष्ट-देव** के रूप को दृष्टान्त के रूप में लोगों के सामने दिखाता चलता है कि 'देखो, यही रूप मेरे हृदय में सदा विराजमान रहता है, जिसे मूर्तिकार ने इस प्रतिमा के रूप में प्रकट कर दिखाया है।'

यह सत्य है कि भक्त अपने **इष्ट-देव** को हृदय में ही नहीं रखता था, पूजन के लिए, दूसरों के ध्यान, मनन, चिन्तन के लिए प्रतिमा के रूप में भी प्रकट करता रहा है। जिस युग में संसार के प्राणी अपनी देह को भी नहीं पहचान पाते थे, उस समय भारत के लोग, मूर्तियाँ बनाकर अपने **इष्ट-देव** को दूसरों के सामने प्रकट करते थे। इससे भारत-वर्ष की **मूर्ति - कला** का ही परिचय नहीं मिलता, इसकी प्राचीन धार्मिकता का भी दिग्दर्शन हो जाता है।

मूर्ति-कला और उसका पूजन सृष्टि के आदि-काल से ही चला आ रहा है। **कैसी मूर्ति बननी चाहिए, किस प्रतिमा से क्या लाभ है? देवताओं की प्रतिमाएँ कैसी होनी चाहिए? उनके निर्माण में त्रुटि हो जाने पर उसका कैसा बुरा प्रभाव देश पर पड़ता है? सुन्दर स्वस्थ नयनाभिराम दर्शनीय प्रतिमा का निर्माण करने से देश के लोगों पर तथा देश पर कैसा सु-प्रभाव पड़ता है?** इसका वर्णन **'मत्स्य पुराण'** में आया है—

"प्रतिमा का कोई अङ्ग वास्तविकता से अर्थात् जितना अङ्ग उस प्रतिमा का है, जैसा है, उससे अधिक नहीं होना चाहिए। हीन अङ्गवाली प्रतिमा भी नहीं बननी चाहिए। हीन अङ्गवाली प्रतिमा और विकराल रूपवाली प्रतिमा स्वामी का नाश करनेवाली होती है।

जरूरत से अधिक अङ्गवाली प्रतिमा मूर्तिकार को ही मार डालनेवाली होती है। दुबली-पतली प्रतिमा देश का अर्थ-नाश करनेवाली होती है। कृशोदरी (दुबले-पतले उदरवाली) दुर्भिक्ष लानेवाली होती है। विना मांसवाली प्रतिमा अर्थात् जिसमें हड्डियाँ दिखाई पड़ती हों, ऐसी प्रतिमा देश का धन विनाश करनेवाली होती है।

टेढ़ी नाकवाली प्रतिमा दुःख देनेवाली होती है। संक्षिप्त अङ्गवाली प्रतिमा भय उत्पन्न करानेवाली होती है। चिपटे अङ्गवाली प्रतिमा दुःख और शोक देनेवाली होती है तथा बिना आँखवाली मूर्ति नेत्र-नाशक होती है। हीन मुखवाली प्रतिमा दुःख-दायिनी होती है। हाथ और पैरों से सूखी हुई प्रतिमा भी दुःख-दात्री होती है। हीन अङ्गवाली तथा हीन जाँघवाली प्रतिमा मनुष्यों को भ्रम उत्पन्न करानेवाली होती है तथा उन्माद (पागल) करनेवाली होती है।

टेढ़े मुँहवाली, कटि (कमर) से हीन, हाथ-पैर से विहीन प्रतिमा देश के राजा को मारनेवाली होती है। जाँघ और जानु (ठेहुनी से नीचे का स्थान) से हीन प्रतिमा शत्रुओं का कल्याण करनेवाली होती है। छाती से हीन प्रतिमा पुत्र और मित्र का विनाश करनेवाली होती है।

सम्पूर्ण अङ्गों से परिपूर्ण प्रतिमा देश के लोगों की आयु और लक्ष्मी सदा बढ़ानेवाली होती है। इसलिए उपर्युक्त लक्षणों से युक्त प्रतिमा बनानी चाहिए, जो देश के लिए शुभ-प्रद तथा दर्शनार्थियों के लिए लाभ-प्रद हो।"

सुन्दर, नयनाभिराम, मनोहर, हँसमुख सुखद, आकर्षक, चित्ताकर्षक, आनन्द-दायिनी—ये कुछ विशेषण हैं, जो प्रतिमा के लिए व्यवहृत होते हैं। जिन मूर्तियों को देखने से ही मन को **सुख** मिले और

श्रीप्रभु

ह्रीं = श्री प्रभु माया का रचनेवाला स्वामी है, जिससे विश्व को जीवन की आवश्यकताओं का भान होता है।

श्रीं = श्री प्रभु श्रेयत्व का कर्त्ता है, जिससे जीवन की उलझन सुलझाई जाती है व क्रिया सूझती है। संक्षेप में क्रिया-रूपी प्रवाह का मूल कारण है, जिसे तरने से कल्याण होता है।

क्रीं = श्री प्रभु विद्या-अविद्या के संघर्षण का कर्त्ता है, जिससे मनुष्य को क्रिया का अनुभव मिलता है और सर्व-विकार पचकर युद्ध-शक्ति (एबिलिटी टु स्ट्रगल) की प्राप्ति होती है।

ऐं = श्री प्रभु मूलाग्नि व प्रवाहिनी गति का स्वामी है, जिससे जड़त्व दूर होता है।

क्लीं = श्री प्रभु परिश्रम का कर्त्ता है, जिससे जीवन की शुष्कता दूर होती है।

स्त्रीं = श्री प्रभु नव-नवत्व-रूप व्याधि एवं प्राचीनत्व-रूप मृत्यु से बचानेवाला और बचना सिखानेवाला है।

हूं = श्री प्रभु सत्य का काश, उसकी पूर्ति या उसको पहचानने की शक्ति को देनेवाला है। अपना अस्तित्व कैसे संभाल कर सुरक्षित रक्खा जाए, यह सिखलानेवाला है।

श्री प्रभु सबका कल्याण करनेवाला है। उसके चरणों में 'रज' बनकर चिपकने के भाव में अखिल विश्व की उपासना समाई हुई है।

—गुप्तावतार बाबाश्री

[पृष्ठ ३६ का शेष]

नयनों को आनन्द प्राप्त हो तथा मुँह में हँसी या मुस्कुराहट आ जाय, वही स्वाभाविक पूजनीया प्रतिमा है। मूर्त्ति वही श्रेष्ठ है, जिसे देखने पर आँखें देखती ही रह जायँ। वहाँ से टलने-डिगने का नाम न लें। जब-जब दर्शन करें, तब-तब नई भावना हृदय में जागृत हो, वही रमणीक प्रतिमा है। कालिदास ने लिखा है—**'तदेव रूपं रमणीयतायाः, क्षणे - क्षणे यन्नवतामुपैति।'**

अपने आराध्य देव का जब-जब दर्शन भक्त करता है, तब-तब उसके पाप नष्ट होते हैं और पुण्य की वृद्धि होती है। इसीलिए वह सदा-सर्वदा देखते ही रहना चाहता है। आँख से ओझल होना उसके लिए कष्ट-दायक होता है। जिस तरह कमल सूर्य को सदा सामने रखना चाहता है, अन्यथा म्लान हो जाता है तथा कमलिनी चन्द्र-दर्शन जब तक होते रहते हैं, तब तक विकसित - प्रफुल्लित रहती है, अन्यथा सम्पुटित हो जाती है; उसी तरह भक्त इष्ट-देवता को क्षण भर भी अपने नेत्रों से विलग तथा ओझल होने देना नहीं चाहता। वह तो यही चाहता है कि मेरे **इष्ट-देवता** मेरे सामने मेरे नेत्रों को सदा सर्वदा आनन्द प्रदान करते रहें।

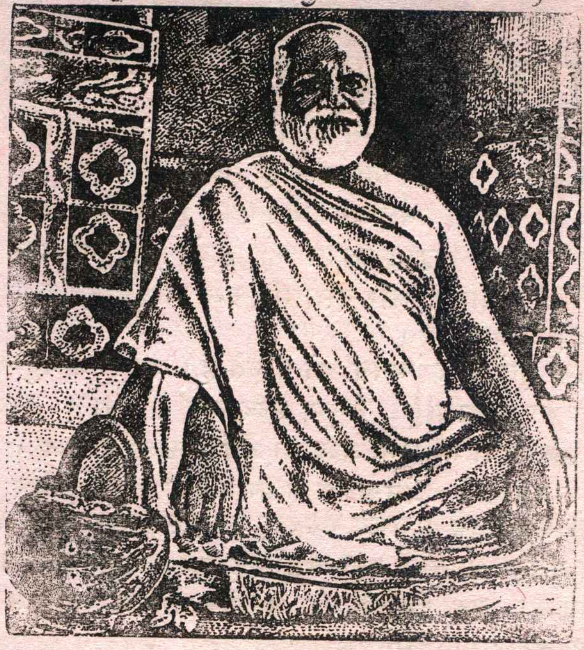

पुण्य तिथि
८ जून, १९९२

राष्ट्र-गुरु परम पूज्य स्वामी जी महाराज
उदबोधक टिप्पणी, पावन संस्मरण एवं उल्लेखनीय प्रसग

[ब्रह्मज्ञ, शास्त्र-छन्द-ज्योतिष-निरुक्त-पुराण-साहित्य-दर्शन के वेत्ता, भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के सजीव विश्व-कोष, देश-विदेश की अनेक भाषाओं के मर्मज्ञ, निःस्पृह, योग-निष्ठ, परम वीत-राग, सिद्ध-वाक्, संयम-सदाचार-स्वरूप, तपोपूत यष्टि-कोपीन-धारी, अनामी, मन्त्र-तन्त्र-शास्त्र के सिद्धान्त-पारङ्गत, बाल-सुलभ सरलता-युक्त एवं सर्वोपरि परम राष्ट्र-हितैषी 'राष्ट्र-गुरु' परम पूज्य स्वामी जी महाराज के प्रायः सभी शोध-पूर्ण निबन्ध 'चण्डी' मासिक पत्रिका में समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं। प० पू० स्वामी जी महाराज के ही आशीर्वाद से 'चण्डी' मासिक पत्रिका अपने प्रकाशन के ५० वर्ष पूर्ण कर चुकी है।

'राष्ट्र-गुरु' प० पू० स्वामी जी की पुण्य-तिथि (८ जून, १९९२) की पावन-स्मृति के सन्दर्भ में यहाँ स्वामी जी की उद्‌बोधक टिप्पणी, प्रेरणा-दायक संस्मरण एवं उल्लेखनीय प्रसङ्ग विषयक कुछ पृष्ठ प्रस्तुत हैं। स्वामी जी द्वारा संस्थापित **'श्रीपीताम्बरा पीठ'**, **दतिया** (म. प्र.) स्वामी जी की **तपःस्थली** होने के कारण पूर्ण-रूपेण जाग्रत **'सिद्ध-पीठ'** है और रहेगा। देश के कोने-कोने से आस्तिक लोग एवं साधक-गण प्रातःस्मरणीय स्वामी जी के इस तपोपूत **'श्रीपीताम्बरा पीठ'** में निरन्तर आते रहते हैं और अभीष्ट लाभ उठा कर धन्य होते रहते हैं। **'श्रीपीताम्बरा पीठ'** की यह महिमा बढ़ती ही जाएगी क्योंकि परम पूज्य स्वामी जी की अनवरत साधना का ऐसा ही प्रभाव है। यहाँ **'श्रीपीताम्बरा पीठ पुस्तकालय'** एवं आगे जून, १९९२ के अङ्क में प्रकाशित **'श्रीपीताम्बरा पीठ चिकित्सालय'** विषयक विवरण से पाठकों को भी हमारे इस कथन की सत्यता स्वतः ज्ञात हो जाएगी। इसमें सन्देह नहीं।—सम्पादक]

'राष्ट्र-गुरु' परम पूज्य स्वामी जी की उद्बोधक टिप्पणी—

आर्यों का मूल स्थान—'भारत'

"...अंग्रेजों ने हमारे देश के इतिहास को बहुत विकृत कर दिया है। आर्यों को भारत का मूल निवासी न बताना महान् भूल है। आर्य—भारत के ही मूल निवासी थे।

सृष्टि में मनुष्य की उत्पत्ति सर्व-प्रथम **'मेरु-पर्वत' (हिमालय)** पर हुई। यहीं से मानव जाति का प्रसार प्रारम्भ हुआ। पाश्चात्य विद्वान् हजरत नूह के दो पुत्रों-**'हेम'** और **'सेम'** से मानव सृष्टि का विस्तार मानते हैं। इसी को बाइबिल और इस्लामी ग्रन्थ भी मानते हैं। हजरत नूह की कथा तो **वैवस्वत मनु** की कथा का ही अनुवाद है।

जर्मन लोग अपना मूल पुरुष **'मनस'** को मानते हैं। जर्मनी में मनुष्य को **'मेनस'** कहते हैं और आंग्ल भाषा में **'मैन'** इसी का अपभ्रंश है। मनुष्य शब्द **'मनु'** से बना है और **'मैन'** तथा **'मेनस'** शब्द **'मनस'** से बने हैं। मिश्र की भाषा में **'नून'** शब्द का अर्थ मछली होता है। यह अक्षर अंग्रेजी, अरबी आदि में अब भी मछली के समान है। जल-प्रलय के समय हजरत नूह ही बच सके थे।

वैवस्वत मनु को जल-प्रलय के समय भगवान् ने 'मत्स्य'-रूप धारण करके बचाया था, जैसा कि पुराणों से स्पष्ट है। वही मत्स्य भगवान्, वहाँ **'नूह'** कहे गए। **'हेम'** तो स्पष्ट ही **हिरण्यगर्भ सूर्य** का अपभ्रंश है और **'सेम'** सोम का। यही **हेमेटिक** और **सेमेटिक** जातियों का मूल है। **सूर्य-वंशी** तथा **चन्द्र-वंशी** क्षत्रिय ही भारत से बाहर गए। सूर्य और चन्द्र मत्स्य भगवान् के पुत्र हैं। उन्हीं से सृष्टि का विस्तार हुआ। अवश्य ही यह 'पौराणिक कथा', जब करोड़ों वर्षों के पश्चात् वहाँ सङ्कलित हुई, तो उसका रूप अस्फष्ट हो गया। बाहर क्षत्रियों के साथ ब्राह्मण भारत से नहीं गए। ब्राह्मणों के न मिलने से क्रिया लुप्त होती गई और अनेक भारतीय जातियाँ शूद्रत्व को प्राप्त हो गईं।

गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से महाराज सगर ने अपने पिता के शत्रु—अन्यायी क्षत्रिय नरेशों—शक, यवन, कम्बोज, पारद, पहल्व, कौलि, नाग, महिष, दार्व, चोल और केरल को पराजित करके देश से धर्म-च्युत कर निष्कासित कर दिया। महाराज ययाति ने अवज्ञा करने पर, अपने पुत्रों को म्लेच्छ होने का शाप देकर देश से निष्कासित कर दिया। इस प्रकार महाराज विश्वामित्र जी के पचास पुत्र म्लेच्छ हो गए। **'तुर्वसा यवना जाताः'**—ययाति के पुत्र तुर्वसु से यवन उत्पन्न हुए। **'नरिष्यन्तस्य शकाः पुत्राः'**—शक लोग नरिष्यन्त की सन्तति हैं। पुराणों में इन सब जातियों का वर्णन है। इसी प्रकार तथा क्रम से भारत से निर्वासित क्षत्रिय-कुमारों की सन्तति से पृथ्वी जन-पूर्ण हुई है—

एतद्देश-प्रसूतस्य सकाशादग्र-जन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्या सर्व-मानवाः॥

'पारसी' भी मूल निवासी भारत के ही हैं। इसका प्रमाण यही है कि इन्होंने वहाँ पर भारतीय नाम ही नगरों और नदियों के रक्खे। उदाहरणार्थ **'सरस्वती'** के स्थान पर **'हरहवती'**, **'सरयू'** के स्थान में **'हरयू'**, **'भारत'** का **'फरत'** तथा **'यूफरत'**, **'भू-पालन'** का **'बेबिलन'**, **'काशी'** का **'कास्सी'** और **'आर्यन'** का **'ईरान'** कर लिया। फारसी में **'स'** का उच्चारण **'ह'** होता है। पारसीक धर्म-ग्रन्थों में उन्होंने अपने को स्पष्ट पश्चिमी हिन्दू तथा भारतीयों को पूर्वी हिन्दू लिखा है। **'अथर्व-वेद' की पैप्प-लाद शाखा ही पारसी धर्म का मूल है। इसी पारसी-धर्म की परम्परा में यहूदी, ईसाई तथा इस्लाम धर्म हैं। अतः संस्कृत शब्द किसी-न-किसी रूप में** इन धर्मों में आए ही हैं। **'शुबरात'** **'शिव-रात्रि'** का ही एक **रूप है**। 'ईद' के चन्द्रमा तथा 'शुक्ल'-पक्ष की द्वितीया चन्द्रमा का एक ही महत्त्व है। **'रोजा'** भी **'चान्द्रा-यण व्रत'** का सरल संस्करण है। यह सब यही सिद्ध करता है कि **आर्यों का मूल स्थान भारत ही है।**..."

'राष्ट्र-गुरु' प० पू० स्वामी जी की पुण्य-तिथि के सन्दर्भ में :

पावन संस्मरण [१]

स्वामी जी और चमत्कार

सन् १९५४-५५ की बात होगी, पूज्य-पाद गुरु जी अपने आसन पर बैठे जप कर रहे थे। सायं-काल का समय था। किसी भद्र घराने की दो महिलाएँ आईं, जिनमें एक युवती थी, दूसरी बुढ़िया। बहू-सास रही होंगी। दोनों गुरु जी के सामने बैठ कर रोने लगीं। सन्त-हृदय प्रभावित हुए। जप रोक कर पूछा—**'क्या बात है ? क्यों रो रही हो ?'**

वृद्धा ने निवेदन किया—महाराज जी ! मेरा लड़का पागल था। उसको हम लोग बाँध कर रखते थे। किसी तरह बन्धन (रस्सी का) ढीला हो गया और हमारा पुत्र चला गया। बहुत खोज-बीन की, मिल नहीं रहा है।

महाराज जी ने पूछा—**'पागल था, तो घर में बाँधकर क्यों रखती थीं ? पागल-खाने में इलाज क्यों नहीं कराया ?'**

बुढ़िया का उत्तर था—महाराज ! दो - तीन वर्ष तक पागल - खाने में भी रखा, बहुत इलाज कराया, अच्छा नहीं हुआ। डाक्टरों ने जवाब दे दिया—'यह पागल अच्छा नहीं हो सकता।' इसलिए उसको घर पर ही रखते थे।

महाराज जी ने कहा—**जब उसका पागल-पन लाइलाज था, तो वह मृतक के ही समान था। तुम्हारे किसी काम का तो था नहीं, फिर क्यों मोह करती हो ? जाने दो, सब्र करो।'**

इस पर युवती रो पड़ी और बोली—महाराज जी ! उस पागल शरीर को ही आँख के सामने रखकर मैं उसकी सेवा करती थी और अपने को सौभाग्य-वती मानती थी। समाज में मैं सधवा कही जाती थी। अब डर है कि रेल - लाइन पकड़ कर जाते समय कहीं रेल से कट जाएँगे, तो मैं विधवा हो जाऊँगी। उस बहू की दर्द-भरी आवाज से गुरु जी विचलित हो गए। उसे कोई उत्तर नहीं दिया, मौन हो गए और मुश्किल से एक मिनट आँख बन्द की और बोले— **'अभी वह सकुशल है। उत्तर —पश्चिम दिशा में है और दो-तीन दिन में तुमको समाचार मिल जाएगा। जाओ।'**

वे चली गईं और गुरु जी पुनः अपने जप में लग गए।

लगभग तीन दिन बाद वही दोनों महिलाएँ एक बड़े थाल में मिठाई और प्रसाद भरकर उसी समय सायं-काल आईं और हँसती हुई आईं। गुरु जी ने विनोद से पूछा—**'आज तो तुम लोग प्रसन्न हो, क्या बात है ?'** बुढ़िया ने उत्तर दिया—हमारा लड़का मिल गया ! आज-कल बरेली पागल-खाने में बन्द है। वहाँ से तार आया है कि आकर ले जाओ।

गुरु जी ने पूछा—**'बरेलीवालों को तुम्हारा पता कैसे मालूम हुआ, यह समझ में नहीं आता।'**

बुढ़िया ने कहा—महाराज जी ! हम लोग लड़के का नाम और अपना पता लिखकर उसकी कमीज की जेब में हमेशा रखते थे। किसी भद्र पुरुष ने उसे पागल समझ कर पागल-खाने में बन्द कराया और पागल-खानेवालों ने यह पता पढ़कर हम लोगों को सूचना दी होगी।

गुरु जी मौन हो गए, बोले—**'जाओ, माई को प्रसाद लगाओ और घर जाओ।'**

पूज्य-पाद महाराज जी द्वारा नित्य ही ऐसे चमत्कार होते रहते थे। वे सर्वज्ञ थे, लेकिन अपनी इन सिद्धियों को वे छिपाते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि **'चमत्कार नहीं करना चाहिए चमत्कार से ही ईसा फाँसी पर चढ़ा था। इसलिए अपने को मुक्त रखना चाहिए।'** **—पण्डित सूर्यदेव शर्मा, दतिया**

पावन संस्मरण [२]

वन-खण्डेश्वर के 'शिव'-मन्दिर की प्राचीनता

एक दिन श्रीपीताम्बरा-पीठेश्वर स्वामी जी महाराज प्रात:-कालीन वेला में अन्दर बगिया में विराजमान थे। तभी पेड़ के ऊपर एक काला कौवा बोला। पूज्य-पाद ने अपनी भाव-भङ्गिमा को तोड़ते हुए कहा कि—**'आज भाद्र-कृष्ण नवमी है। यह कौवा क्या कह रहा है, जानते हो ?'**

मैंने उत्तर दिया, **'श्री महाराज, भाषा तो नहीं पहचानते, परन्तु यह जानते हैं कि यह शिव जी महाराज के दरबार और उनकी दया-मय कृपा का, जिन्होंने मुझ जैसे पतित को भी आश्रय दिया है, बखान कर रहा है।'**

महाराज श्री मुस्कराकर बोले, 'ठाकुर ! तुम खुशामद करना सीखते जा रहे हो। कौवे दो प्रकार के होते हैं। एक तो बिल्कुल काले और दूसरे कुछ भूरापन लिए हुए। काला कौवा जब बोलता है, तो शुभ समाचार देता है और भूरा कौवा जब बोलता है, तो अशुभ समाचार देता है।

'ठाकुर ! तुमने ठीक कहा, **यह** (पीताम्बरा-पीठ, दतिया) **शिव जी का प्राचीन स्थान है और अब तो यहाँ माँ श्री भी आ गई हैं। यह वनखण्डेश्वर का 'शिव' - मन्दिर 'महा - भारत' के समय का है। यह स्थान 'अश्वत्थामा' जी की तपो-भूमि भी रहा है। यहाँ पर रात्रि समय साधकों को यदा-कदा दिखाई देनेवाले भीम-काय देव भी 'महा-भारत'-कालीन किसी सिद्ध तपस्वी का ही सूक्ष्म शरीर है। यहाँ पर शाक्त लोग बहुत रहते थे। इसी से यह स्थान इसी प्रकार का बना हुआ है। लगभग ४७ वर्ष पूर्व २९ जुलाई, सन १९२९ ई० को जब हम प्रथम बार दतिया आए थे, तब भी यह स्थान निर्जन था। उसी समय हमको भी उस 'महा-भारत'-कालीन भव्य मूर्ति के दर्शन हुए और उन प्रथम दर्शनों में ही हमें यहाँ रहने का निर्देश हुआ।'**

—श्री वदनसिंह, रायभा, आगरा (उ० प्र०)

पावन संस्मरण [३]

'स्त्री'—हिन्दू-मात्र द्वारा पूज्य

'शाक्त'-मार्ग में स्त्री-वर्ग को विशेष महत्त्व दिया जाता है क्योंकि लड़कियाँ देवी का स्वरूप होती हैं। आज-कल सामाजिक बुराइयों के कारण हिन्दू लोग लड़कियों की शादी में दहेज बहुत माँगते हैं। यह प्रथा बङ्गाल और काश्मीर में भी है। यह अच्छी बात नहीं है। लड़कियाँ बहुत व्यवहार-कुशल होती हैं। दो लड़कियों—सीता और शकुन्तला की कथाएँ हमारे ग्रन्थों में लिखी हैं। सीता जी का पालन-पोषण श्री जनक जी ने किया था और शकुन्तला कण्व ऋषि के आश्रम में रहती थीं, जब कि वे उनकी पुत्रियाँ नहीं थीं। जब सीता जी रामचन्द्र जी के साथ जाने लगीं, तो जनक जी विदेह होते हुए भी ममता-वश फूट-फूट कर रोने लगे। इसी प्रकार जब शकुन्तला दुष्यन्त के साथ जाने लगीं, तो कण्व ऋषि भी धैर्य छोड़ कर बुरी तरह रोने लगे। वास्तव में लड़कियों का व्यवहार ही ऐसा होता है।

शादी के पश्चात् स्त्रियाँ सतीत्व को प्राप्त करती हैं। 'सती' का स्थान सर्वोच्च है। अनुसुइया सती थीं। उन्होंने सीता जी को शिक्षा दी थी। आज भी जिस परिवार में, जब कोई सती होती है, तो उस परिवार में कोई भी कार्य आरम्भ करने से पूर्व सती की पूजा की जाती है। इसीलिए हमारे सम्प्रदाय में भी स्त्री का विशेष महत्त्व है और स्त्री हिन्दू-मात्र द्वारा पूज्य है। भारतीय संस्कृति में जन्म-भूमि को **'मातृ'-भूमि** कहते हैं और विदेशी लोग उसी को **'पितृ'-भूमि** कहते हैं। **—प० पू० स्वामी जी**

श्री स्वामी जी का शिशु एवं समाज-प्रेम

महा-पुरुषों के चरित्र के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि जहाँ उनका अधिकांश समय स्वाध्याय एवं साधना, तात्त्विक-चिन्तन एवं गम्भीर वातावरण में व्यतीत होता है, वहाँ उन विभूतियों के व्यक्तित्व में कुछ ऐसी स्वभाव-गत विशिष्टताएँ होती हैं, जो उल्लास - मय विनोदी वातावरण बनाए रखती हैं। श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज का स्वभाव भी ऐसी ही अनेक विशिष्टताओं से विभूषित था।

महान् विभूतियाँ बालकों से स्वभावतः प्रेम करती हैं। राजर्षियों एवं ब्रह्मर्षियों का **'बाल-प्रेम'** तो प्रसिद्ध है। श्री स्वामी जी महाराज का साधना एवं स्वाध्याय से अवशिष्ट समय भी **'बाल-विनोद'** में व्यतीत होता था। श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज का **'शिशु-स्नेह'** केवल 'दतिया' तक ही सीमित नहीं था, अपितु जहाँ-जहाँ श्री-चरण प्रस्थान करते थे, शिशु-समाज इन्हें घेरे रहता था।

बालकों को स्वयं प्रसाद देना, तोतली भाषा में बातें करना, श्री महाराज जी का सहज स्वभाव था। यही कारण है कि सबेरे-से-शाम तक समय - समय पर छोटे - छोटे बालक, श्रीचरणों के समीप आते रहते थे। प्रातः एवं सन्ध्या-काल, भ्रमण करते समय मार्ग में, नन्हें-नन्हें मुन्ने यह कहते सुने जाते थे—**"क्या मैं पास हो जाऊँगा ? मुझे पास कर देना।"**

प्रस्तुत प्रसङ्ग में 'विद्यार्थी'-समाज की यह धारणा उल्लेखनीय है कि 'पीताम्बरा-पीठ' में नित्य पीताम्बरा माई के दर्शन करनेवाले छात्र कभी परीक्षा में अनुत्तीर्ण नहीं होते। यह भी अविस्मरणीय सत्य है कि जहाँ पूज्य श्री महाराज जी, जिस उत्साह-नियम एवं रुचि से वेद, व्याकरण, साहित्य, दर्शन, उपनिषद्, गीता, रामायण एवं महा-भारत आदि विषयों का प्रवचन करते, वहाँ पहली कक्षा के बच्चों को 'वर्ण-माला' सिखाने में किञ्चित् प्रमाद प्रदर्शित नहीं करते थे।

श्रद्धेय श्री-चरणों के सान्निध्य में, शिशुओं का स्वच्छन्द, स्वाभाविक एवं निर्भीक व्यवहार सदा देखने को मिलता। सुबह से शाम तक, समूह में अथवा पृथक्-पृथक्, बालक एवं बालिकाएँ स्वामी जी के पास आती थीं। ये सभी बालक **'भवन्तं नमस्करोमि'** कह कर श्री-चरणों में प्रणाम करते थे तथा प्रसाद प्राप्त कर प्रसन्नता - पूर्वक पीठ से प्रस्थान करते थे। यह क्रम नित्य चला करता था। किसी भी समय, 'पीठ' पर आया हुआ बालक बिना प्रसाद ग्रहण किए वापस नहीं जाता था। आश्चर्य है, प्रसाद का लघु-पात्र कभी रिक्त नहीं होता था ! पूज्य श्रीमुख का कथन था कि—**'मुझे प्रसाद के बाँटने में आनन्द आता है, संग्रह में नहीं। यदि प्रसाद का बाँटना बन्द कर दिया जाए, तो उसका आना भी बन्द हो जायगा।'**

इस विषय में श्रीमुख से एक आख्यायिका सुनने को मिली थी, जो सत्य है। **इन्दौर-राज्य में एक त्यागी ब्राह्मण वास करता था। राजा जो कुछ भी उसे भेंट करते थे, वह बाँट देता था। बाँटने की इस प्रवृत्ति से उसकी गृहिणी सदैव असन्तुष्ट रहती थी। एक बार की बात है, राजा ने ब्राह्मण को सहस्र मुद्राएँ भेंट कीं। मुद्राएँ ब्राह्मण ने ब्राह्मणी को देकर पुनः बाँटने को माँगीं। ब्राह्मण के बहुत समझाने पर भी उसने मुद्राएँ वापस नहीं दीं। कालान्तर में त्यागी ब्राह्मण के संग्रही होने का प्रचार हो गया एवं राजा तक यह समाचार पहुँचा। परिणाम - स्वरूप राजा ने ब्राह्मण को भेंट देना बन्द कर दिया।**

पूज्य श्री महाराज जी बालकों को जिस प्रकार प्रसाद देते थे, उसी प्रकार से विद्यार्थियों को पुस्तकें तथा आर्त शिष्यों को आर्थिक सहायता भी देते थे। पूज्य श्रीचरणों को भेंट किया गया द्रव्य, 'पुस्तकालय' में व्यय किया जाता था अथवा विद्यार्थी, शिष्यों को दे दिया जाता था। इसी प्रकार से भेंट किए गए सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र, आश्रम पर आए हुए साधु ब्रह्मचारियों को दे दिए जाते थे अथवा शिष्य-मण्डली में वितरित कर दिए जाते थे।

'भारत'-भूमि के वीत-राग तपस्वियों के इस सिद्धान्त के समक्ष कि **'आनन्द—संग्रह में नहीं, वितरण में है'**—आर्थिक **'समाज-वाद'** एवं **'साम्य-वाद'** के समस्त सिद्धान्त निस्सार एवं निराधार प्रतीत होते हैं।

पीठ पर बहुधा अनुष्ठान, हवन, कुमारी तथा ब्राह्मण-भोजन सहस्रों की संख्या में होते थे। **'कुमारी' एवं 'ब्राह्मण'-भोजन** नव-रात्र में नियमित रूप से तथा गुरु-पूर्णिमा जैसे पर्व तथा अन्य सुअवसरों पर भी होते थे। वर्ष में अनेक बार सामूहिक भोजों का आयोजन होता था। भोजन कराना श्री महाराज जी का स्वभाव था। कुमारियों एवं ब्राह्मणों को सहस्रों की संख्या में भोजन करते हुए देख, श्रद्धेय श्री महाराज जी को अपूर्वानन्द की अनुभूति होती थी तथा पास में स्थित शिष्य एवं विद्यार्थियों को सहज ही मुद्रा में श्रीमुख से सुनने को मिलता था—**'जानते हो, मैं ऐसा क्यों करता हूँ—मुझे खिलाने का शौक है। मुझे खाने में नहीं, खिलाने में आनन्द आता है।'**

पूज्य श्री महाराज जी को कभी भी, किसी ने अकेले भिक्षा करते न देखा होगा। भिक्षा के समय मध्याह्न एवं रात्रि में स्थान पर आए हुए दर्शनार्थी, अतिथि तथा श्रीचरणों के शिष्य उपस्थित रहते थे। महाराज जी कभी **'एकाकी भिक्षा'** नहीं करते थे। भिक्षा के समय महाराज जी स्वयं भोजन के लिए शिष्यों से अनुग्रह-पूर्वक आग्रह करते थे, जिसे भिक्षा के उपरान्त सभी प्रसाद-रूप में ग्रहण करते थे। भिक्षा के समय अनेक मनोरञ्जक प्रमाणों एवं युक्तियों द्वारा महाराज जी अकेले भोजन करने का निषेध करते थे। भिक्षा के बाद श्रीमुख से प्रायः सुनने को मिलता था—**'सब मिलकर थोड़ा - थोड़ा खाओ—'ईट टु लिव, नॉट लिव टु ईट'—अकेले खानेवाला पापी होता है। 'केवलादो भवति केवलादी।'**

संक्षेप में श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज के शुद्ध सरल भाव में, **वेद-मन्त्रों का सत्यत्व एवं सार्थकत्व** सम्पूर्ण-रूप से सन्निविष्ट था।

—पं० बाबूलाल द्विवेदी

'राष्ट्र-गुरु' परम पूज्य स्वामी जी द्वारा स्थापित–

श्री पीताम्बरा-पीठ-पुस्तकालय एवं संस्कृत-परिषद्

तन्त्र-शास्त्र के प्रकाण्ड ज्ञाता तथा चारों वेदों, छह शास्त्रों एवं समस्त दर्शनों और उपनिषदों के तत्त्वज्ञ मनीषी तथा दश महा-विद्याओं में प्रमुख भगवती वगलामुखी के परम साधक ब्रह्म - लीन श्री पीताम्बरा-पीठाधीश्वर **'राष्ट्र-गुरु'** परम पूज्य श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज का पुस्तकों के प्रति बड़ा प्रेम था। उन्होंने धीरे-धीरे पुस्तकों का सङ्कलन प्रारम्भ किया था, जो आज वृहत् पुस्तकालय के रूप में पीताम्बरा-पीठ मन्दिर के शेष पृष्ठ में स्थित है।

पूज्य-पाद के दैवी प्रतिभा-सम्पन्न स्वरूप में शास्त्र एवं साधना का सुन्दर समन्वय था। प्रायः शास्त्रज्ञ साधक एवं साधक शास्त्रज्ञ नहीं होते, किन्तु पूज्य - पाद का स्वरूप इसका अपवाद था। **'श्रीपीताम्बरा-पीठ पुस्तकालय'** में वेद एवं वेदाङ्ग, साहित्य एवं सङ्गीत, धर्म एवं दर्शन, पुराण, इतिहास, आगम-सम्प्रदाय के समस्त उच्च कोटि के ग्रन्थों का, प्राकृत एवं प्रान्तीय भाषा-ग्रन्थों का, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी एवं अरबी आदि भाषा-ग्रन्थों का संग्रह है। इस समय उक्त सभी विषयों के लगभग ४००० ग्रन्थ संग्रहीत हैं। तन्त्र-ग्रन्थों का संग्रह तो अपूर्व है ही। इनमें से अधिकतर ग्रन्थ अब प्रकाशकों के यहाँ भी उपलब्ध नहीं हैं।

'श्रीपीताम्बरा-पीठ पुस्तकालय' प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण एवं समृद्ध है। शास्त्रज्ञ एवं शोध-कर्ताओं को, साधक एवं मुमुक्षुओं के लिए समान रूप से उपयोगी है। पुस्तकालय में प्रत्येक विषय के, विशेषकर मन्त्र-शास्त्र के, हस्त-लिखित अप्रकाशित ग्रन्थों का भी संग्रह है।

'श्रीपीताम्बरा-पीठ संस्कृत-परिषद्' की स्थापना पूज्य-पाद द्वारा शिक्षित एवं दीक्षित, साहित्य एवं व्याकरण के निष्णात विद्यार्थियों ने उनके द्वारा प्रचलित एवं संचालित संस्कृत के व्याकरण, साहित्य और अन्य विषयों के अध्यापन की निःशुल्क प्रणाली को अविच्छिन्न रूप से सतत प्रचलित रखने तथा संस्कृत के प्रचार एवं प्रसार के लिए तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए पूज्य - पाद की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से दिनाङ्क २५-५-६० को की थी। तभी से यह संस्था संस्कृत की सेवा में संलग्न है। परिषद् द्वारा संस्कृत के सभी विद्यार्थियों को संस्कृत-अध्ययन की निःशुल्क व्यवस्था है। पूज्य-पाद की मान्यता थी कि भारत की संस्कृति और सभ्यता का उत्थान संस्कृत-भाषा के प्रसार के बिना सम्भव नहीं है। अतः उन्होंने कितने ही विद्यार्थियों को स्वयं संस्कृत पढ़ाकर शास्त्री और आचार्य उत्तीर्ण कराया। अतिरिक्त इसके **'परिषद्'** संस्कृत की विभिन्न परीक्षाओं का केन्द्र है, जिसके द्वारा प्रति - वर्ष सैकड़ों विद्यार्थी लाभान्वित होते हैं। **'संस्कृत-परिषद्'** की ओर से विद्वान् एवं सन्तों के प्रवचन जन-मानस तक पहुँचाने के लिए **'जयन्ती-कार्यक्रम'** भी आयोजित किए जाते हैं, जिनमें 'त्रि - दिवसीय जयन्ती-कार्य-क्रम' [भगवती वगला-मुखी जयन्ती, भगवान् परशुराम जयन्ती, जगद्-गुरु शङ्कराचार्य-जयन्ती तथा गीता-जयन्ती] प्रमुख है। **'परिषद्'** की ओर से एक **'वाचनालय'** भी चलाया जाता है।

'परिषद्' की ही अविस्मरणीय आवश्यक महत्त्व-पूर्ण संस्था है—**'श्रीपीताम्बरा-पीठ प्रकाशन'**। इसका उद्देश्य पूज्य-पाद द्वारा विरचित तथा संग्रहीत दुर्लभ ग्रन्थों का प्रकाशन करना है। पूज्य-पाद स्वामी जी महाराज ने **'श्रीबगलामुखी-रहस्य, शरभ तन्त्र, वैदिक उपदेश, दर्शन-शास्त्र-संग्रह, श्रीमहासुन्दरी पूजा-पद्धति, सिद्धान्त-रहस्य, सप्त-विंशति-रहस्य, महा - विद्या चतुष्टय, छिन्नमस्ता - नित्यार्चन, रेणुका तन्त्र, स्वरोदय-विज्ञान,** लेख-संग्रह' इत्यादि ग्रन्थ स्वयं रच कर 'परिषद्' द्वारा प्रकाशित कराए हैं। अन्य आचार्यों द्वारा विरचित जिन उपयोगी ग्रन्थों पर अच्छी टीकाएँ उपलब्ध नहीं थीं, उनमें से **'चिद्-विलास, पञ्चोपनिषद्, घेरण्ड संहिता, प्रश्नोपनिषद्, शिव-सूत्र भक्ति-सूत्र, वातुलनाथ सूत्र, ईश्वर-गीता, तारा-कर्पूर-राज-स्तोत्र'** आदि ग्रन्थों की संस्कृत एवं हिन्दी-टीकाएँ बनाकर 'परिषद्' से प्रकाशित कराई हैं।

इनके अतिरिक्त जिन उपयोगी ग्रन्थों को अन्य आचार्यों ने लिखा है अथवा अन्य आचार्यों द्वारा उत्तम टीकाएँ की गई हैं, किन्तु प्रकाशित न होने से उपलब्ध नहीं थीं, उनको भी **'परिषद्'** ने प्रकाशित किया है। उनमें **'सौन्दर्य-लहरी'** (श्री शङ्कराचार्य-कृत)—'राम कवि कृत डिण्डिम भाष्य' तथा 'गोपाल-सुन्दरी टीका' सहित, **'नारदीय शिक्षा'** (नारद मुनि कृत)—श्री भट्ट शोभाकर विरचित संस्कृत टीका, साधनोपयोगी ग्रन्थ **'पुरश्चरण-पद्धति'** तथा **'त्रिपुरा-महिम्न-स्तोत्र, वेदान्त - प्रबोध'** (श्री सत्यबोधाश्रम प्रणीत), **'श्रीमातृका-चक्र-विवेक'** (सिद्ध श्री स्वतन्त्रानन्दनाथ विरचित), **'अथर्व - वेदाङ्ग ज्योतिष, योग-दर्शन'** (महर्षि पतञ्जलि विरचित) श्री अनन्त पण्डित कृत संस्कृत वृत्ति-सहित, **'योग-विज्ञान'** प्रथम एवं द्वितीय भाग, हिन्दी भाषा में, **'श्रीविद्या-रत्न-सूत्र'** (आचार्य गौड़पाद कृत), **'काम - कला - विलास'** (श्री पुण्यानन्दनाथ कृत संस्कृत-टीका सहित) आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं।

पूज्य-पाद द्वारा निर्मित **'तान्त्रिक पञ्चाङ्ग'** का भी प्रकाशन 'परिषद्' द्वारा प्रति वर्ष किया जा रहा है, जो तान्त्रिक कार्यों के सम्पादन में साधकों के लिए बड़ा उपयोगी है। **'ललिता-सहस्र-नाम'** (श्री भास्करराय विरचित 'सौभाग्य-भास्कर' टीका-सहित) तथा **'सौन्दर्य-लहरी'** (लक्ष्मीधरी टीका सहित) आदि महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ भी 'परिषद्' द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। अब तक लगभग साठ ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। ये प्रकाशित ग्रन्थ प्रचार-प्रसार के लिए लागत-मात्र मूल्य पर दिए जाते हैं। साधकों के लाभार्थ विभिन्न स्तोत्र एवं स्तुतियों का प्रकाशन तथा निःशुल्क वितरण भी किया जाता है।

—श्री मोतीलाल खड्डर, शास्त्री

['कौल कल्पतरु चण्डी' के आगामी जून, ९२ अङ्क में परम पूज्य श्री स्वामी जी की पुण्य तिथि ८ जून, १९९२ को 'श्रीपीताम्बरा पीठ', दतिया में होनेवाले समारोह का विस्तृत विवरण प्रकाशित किया जायगा। साथ ही, 'पीठ' के 'आयुर्वेद चिकित्सालय' आदि नव - निर्मित एवं संस्थापित विभागों का परिचय पाठकों को दिया जायगा।—सं०]

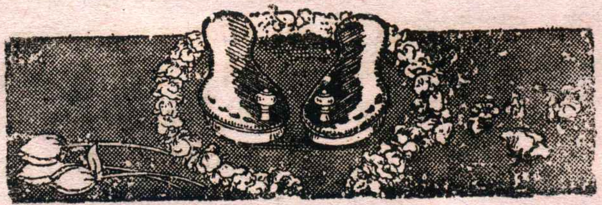

साधन-माला

[चैत्र-अङ्क (अप्रैल, ६२) से आगे]

श्री कार्तवीर्यार्जुन मन्त्र-प्रयोग

आज के धन-प्रधान युग में यदि किसी व्यक्ति का परिश्रम से कमाया हुआ धन किसी जगह फँस जाए तथा उसकी पुनः प्राप्ति की सम्भावना भी दिखाई न पड़े, तो **श्रीकार्तवीर्यार्जुन का प्रयोग** अचूक तथा सद्यः फल-दायी होता है। **'साधन-माला'** स्तम्भ के अन्तर्गत साधकों के लाभ की दृष्टि से हम इस प्रयोग के कुछ भिन्न - भिन्न रूप विधि-सहित दे रहे हैं।

श्रीकार्तवीर्यार्जुन का प्रयोग 'तन्त्र'-शास्त्र की दृष्टि से बड़े गुप्त बताए जाते हैं क्योंकि ये अभीष्ट-फल के देनेवाले, सद्यः सफल होनेवाले हैं। इस 'प्रयोग' से साधक गत-नष्ट धन को तो प्राप्त कर ही सकता है, साथ ही **षट्-कर्म-साधन** यहाँ तक कि प्रत्येक अभिलषित-प्राप्ति में भी सफल हो सकता है।

पौराणिक सन्दर्भों के अनुसार भगवान् विष्णु के अमित तेजस्वी **'सुदर्शन चक्र' के अवतार—हैहय-वंशी राजा कार्तवीर्यार्जुन** को हजार भुजाएँ होने के कारण **'सहस्रार्जुन'** भी कहा जाता था।

'प्रयोग' हेतु आवश्यक निर्देश

(१) प्रयोग की सफलता एवं निर्विघ्नता हेतु सर्व-प्रथम **भू-शुद्धि, आसन-शुद्धि, भूत-शुद्धि, भूतोपसंहार, स्व-प्राण-प्रतिष्ठा** आदि आवश्यक कर्म कर **'श्रीविघ्न - विनाशक' गणेश** का **पूजन** एवं **'कलश-स्थापन'** करें। स्वयं न कर सकें, तो विद्वान् ब्राह्मण का सहयोग प्राप्त करें।

(२) फिर **वैष्णव** अष्ट-गन्ध (१ चन्दन, २ अगरु, ३ कर्पूर, ४ चोर, ५ कुंकुम, ६ रोचना, ७ जटामांसी और ८ मुर) से **'कार्तवीर्य-यन्त्र'** की रचना करें।

(३) **'यन्त्र'** में **प्राण-प्रतिष्ठा** कर **आवरण-पूजा** करें।

(४) कामना - भेद के अनुसार निश्चित संख्या में 'जप' करें। जप पूरा होने पर दशांश **'हवन'**, हवन का दशांश **'तर्पण'**, तर्पण का दशांश **'मार्जन'** एवं मार्जन का दशांश **ब्राह्मण-भोजन** करावें।

(५) 'प्रयोग' की सफलता के लिए दस सहस्र **'गायत्री-जप'** परमावश्यक है।

(६) 'जप' की पूर्ण-संख्या को इस प्रकार बाँटें कि वह सम-संख्या के आधार पर प्रति-दिन किया जा सके। किसी दिन कम और किसी दिन अधिक 'जप' नहीं किया जाना चाहिए।

(७) प्रति-दिन जितनी देर जप चले, उतने समय तक **'अखण्ड दीपक'** अवश्य ही जलता रहना चाहिए।

(८) जब तक 'प्रयोग' चले, तब तक शास्त्रोक्त नियमों का पालन करें। जैसे—**शुद्ध आचार-विचार, आहार, मित-भाषण, दुर्व्यसन-त्याग, भूमि-शयन, ब्रह्मचर्य** आदि।

(९) 'प्रयोग' करने से पूर्व 'मन्त्र' को **पुरश्चरण** द्वारा सिद्ध कर लेना चाहिए।

साधना-क्रम

(१) शुद्ध होकर, सङ्कल्प करें—**देश-कालौ सङ्कीर्त्य अमुक - कामना सिद्ध्यर्थं मम श्रीकार्तवीर्यार्जुन-देवता-प्रीति-पुरस्सरं क्षिप्रममुक-जनस्य बुद्धि-हरण-पूर्वकं स्व-धन-प्राप्तये मनोऽभिलषित-कार्य-सिद्धये वा दीप-दान-पूर्वकं अमुकामुक-संख्यात्मकं जप-रूप-प्रयोगमहं करिष्यामि।**—इस प्रकार **'सङ्कल्प'** करने के बाद **श्रीगणेशादि-पूजन** करें।

(२) गोबर से लेपन कर शुद्ध स्थान (पक्का फर्श हो, तो धोकर पञ्च - गव्य से प्रोक्षण करें) पर ताँबे का बर्तन रखें तथा उसमें लाल चन्दन अथवा रोली से **षट् - कोण** बना कर, उसके बीच में **'ॐ फ्रों'** लिखें। फिर उसमें एक ताँबे का दीप - पात्र (सरसों के तेल, मौली या लाल रङ्ग से रँगी रुई की बत्ती सहित) निम्न मन्त्र पढ़ते हुए स्थापित करें—

शुद्ध तैल - दीपमयं, स्थापयामि जगत्पते !
कार्तवीर्य, महा-वीर्य ! कार्यं सिद्धयतु मे हि तत् ॥

(३) दीप-पात्र के दाहिने भाग में (अर्थात् साधक के बाँईं ओर) एक नई छुरी—निम्न 'मन्त्र' पढ़कर स्थापित करें। छुरी की धार 'दक्षिण' - दिशा की ओर रहे और उसकी नोक (अग्र-भाग) साधक की ओर रहे—'ॐ **नमः सुदर्शनास्त्राय फट्।'**

(४) 'दीपक' का मुख पश्चिम की ओर या साधक की ओर रखें। निम्न मन्त्र से उसे जलाएँ—

ॐ कार्तवीर्य नृपाधीश ! योग-ज्वलित-विग्रह !
भव सन्निहितो देव ! ज्वाला - रूपेण दीपके ।।

(५) मन्त्रोच्चार-पूर्वक 'दीपक' की ज्योति में **प्राण-प्रतिष्ठा** करें। यथा—पहले प्राण-प्रतिष्ठा-मन्त्र का विनियोग पढ़ें—**ॐ अस्य श्री प्राण-प्रतिष्ठा-मन्त्रस्य अजेश-पद्मजाः ऋषयः। ऋग्-यजुः-सामानि छन्दांसि। प्राण-शक्तिर्देवता। आं बीजं। ह्रीं शक्तिः। क्रों कीलकं। श्रीकार्तवीर्यार्जुन-देव-दीपे प्राण-प्रतिष्ठापने विनियोगः।**

'श्रीकार्तवीर्यार्जुन-दीप-देवतायै नमः' से लाल चन्दन एवं पुष्पादि से **'दीपक की पूजा'** करें। पूजा करने के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर 'दीप-समर्पण' करें—

कार्तवीर्य महा - वीर्य ! भक्तानामभयं-कर !
दीपं गृहाण मद्-दत्तं, कल्याणं कुरु सर्वदा ।।
अनेन दीप - दानेन, ममाभीष्टं प्रयच्छ च ।

फिर 'दीपक' की सन्निधि में निम्न-लिखित 'प्राण-प्रतिष्ठा-मन्त्र' का जप करें—

मन्त्र—**ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ हंसः।**

श्रीकार्तवीर्यार्जन-मन्त्र का विनियोग-**ॐ अस्य श्रीकार्तवीर्यार्जुन (स्तोत्रस्य) मन्त्रस्य दत्तात्रेय ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीकार्तवीर्यार्जुनो देवता। फ्रों बीजं। ह्रीं शक्तिः। क्लीं कीलकं। ममाभीष्ट-सिद्धये जपे विनियोगः।**

ऋष्यादि-न्यास—**ॐ दत्तात्रेय-ऋषये नमः शिरसि। अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे। कार्तवीर्यार्जुन-देवतायै नमः हृदये। फ्रों बीजाय नमः गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः पादयोः। क्लीं कीलकाय नमः नाभौ। ममाभीष्ट-सिद्धये जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।**

कर-न्यास—**ॐ आं फ्रों ब्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ईं क्लीं श्रूं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ हुं आं ह्रीं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ क्रैं क्रों श्रीं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ हुं फट् कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॐ। कार्तवीर्यार्जुनाय कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः।**

हृदयादि-न्यास--ॐ आं फ्रों ब्रीं हृदयाय नमः । ॐ ईं क्लीं भ्रूं शिरसे स्वाहा । ॐ हुं आं ह्रीं शिखायै वषट् । ॐ क्रैं क्रों श्रीं कवचाय हुम् । ॐ हुं फट् अस्त्राय फट् । ॐ कार्तवीर्यार्जुनाय नमः सर्वाङ्गे ।

टिप्पणी--नेत्रों का 'न्यास' नहीं होगा अर्थात् षडङ्ग के स्थान में पञ्चाङ्ग - न्यास का ही विधान है ।

मन्त्र-न्यास--ॐ फ्रों ॐ हृदये । ॐ ब्रीं ॐ जठरे । ॐ क्लीं ॐ नाभौ । ॐ भ्रूं ॐ जठरे । ॐ आं ॐ गुह्ये । ॐ ह्रीं ॐ दक्ष-चरणे । ॐ क्रों ॐ वाम-चरणे । ॐ श्रीं ॐ ऊर्वोः । ॐ हुं ॐ जानुनोः । ॐ फट् ॐ जङ्घयोः । ॐ कां मस्तके । ॐ तं ललाटे । ॐ वीं भ्रुवोः । ॐ यां कर्णयोः । ॐ जुं नेत्रयोः । ॐ नां नासिकायां । ॐ यं मुखे । ॐ नं गले । ॐ मः स्कन्धयोः ।

व्यापक-न्यास--मूल-मन्त्र से सर्वाङ्ग-न्यास करें ।

ध्यान--उद्यत्-सूर्य-सहस्र-कान्तिरखिल-क्षोणी-धवैर्वन्दितः ।
हस्तानां शत-पञ्चकेन च दधच्चापानिषूंस्तावता ।।
कण्ठे हाटक - मालया परिवृतश्चक्रावतारो हरेः ।
पायात् स्यन्दनगोऽरुणाभ-वसनाः श्रीकार्तवीर्यो नृपः ।।

मूल-मन्त्र--ॐ फ्रों ब्रीं क्लीं भ्रूं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं फट् कार्तवीर्यार्जुनाय नमः ।

जप-संख्या एवं हवनादि--एक लाख । दशांश-क्रम से १०,००० हवन । १,००० तर्पण । १०० मार्जन अथवा अभिषेक । १० ब्राह्मण-भोजन ।

हवन-सामग्री--चावल, खीर तथा तिल-मिश्रित घृत ।

कामना - भेद से हवन-सामग्री--सरसों-रीठा-लहसुन-कपास--मारण । धतूर या गोरोचन-गोबर--स्तम्भन । नीम-पत्र--विद्वेषण । कमल अथवा कमल-बीज--आकर्षण । हल्दी या चम्पा-चमेली--वशीकरण । बहेड़ा व खैर-समिधा--उच्चाटन । कस्तूरी-गोरोचन--घर से भागे व्यक्ति की वापिसी । कमल-मक्खन-कस्तूरी--गत धन की प्राप्ति । यव (जौ)--लक्ष्मी-प्राप्ति । तिल-घी--पाप-नाश । तिल-चावल-साँवक (साँवक अर्थात् पीली सरसों) लाजा--राज-वशीकरण । अपामार्ग-आक-दूर्वा--पाप-नाश व लक्ष्मी-प्राप्ति । गुग्गुल--प्रेत-शान्ति । पीपल-गूलर-पाकड़-बड़-बेल-समिधा--क्रमशः सन्तान, आयु, धन, सुख, शान्ति । साँप की काँचुली - धतूरा - पीली सरसों - नमक--चौर - नाश । धान--भूमि-प्राप्ति ।

टिप्पणी—सामान्य रूप से किसी भी काम्य कर्म की सफलता के लिए, जितनी संख्या 'जप' की होगी, उसका दशांश 'हवन' होगा, परन्तु जब कार्य - समस्या जटिल हो या सद्य: फल-प्राप्ति की इच्छा हो, तो हवन-संख्या एक सहस्र से दस सहस्र तक ।

कामना-भेद से जप-संख्या—बन्दी-मोक्ष—बारह हजार । वाद-विवाद (मुकदमे में) जय—पन्द्रह हजार । दबे या नष्ट धन की पुन: प्राप्ति—तेरह हजार । वाणी-स्तम्भन-मुख-मुद्रण—दस हजार । राज-वशीकरण—दस हजार । शत्रु-पराजय—दस हजार । नपुंसकता नाश/पुन: पुरुषत्व-प्राप्ति—सत्रह हजार । भूत-प्रेत-बाधा-नाश—सैंतीस हजार । सर्व-सिद्धि-प्राप्ति हेतु—इक्यावन हजार । सम्पूर्ण साफल्य हेतु—सवा लाख । अन्य कोई समस्या हो, तो स्वयं ही संख्या निर्धारित कर लें अथवा योग्य विद्वान् से मार्ग-दर्शन प्राप्त करें ।

उदाहरण (१)—घर से भागे व्यक्ति को वापिस बुलाना है, तो **'सर्व-सिद्धि'**-संख्यक जप—५१,००० होगा, परन्तु यदि वह व्यक्ति कहीं किसी बन्धन में पड़ा होगा, तो कैसे लौटेगा ? अत: **'बन्दी-मोक्ष'**-संख्यक जप—१२,००० इसमें जोड़ लें । खैर की समिधा हो और कस्तूरी, गोरोचन तथा कमल-बीज-मिश्रित (चावल-खीर तिल - सहित) घी से दस हजार हवन करना चाहिए ।

उदाहरण (२)—किसी व्यापारी का ट्रक सामान-सहित लेकर चालक भाग जाए, तो नष्ट-द्रव्य-प्राप्ति हेतु १३,००० के अतिरिक्त चालक के नाम के वर्णाक्षर तथा ट्रक के वर्ण/संख्या के अनुसार अतिरिक्त संख्या में जप करें । साँप की काँचुली-धतूरा-पीली सरसों-नमक तथा चावल-खीर-तिल-घी से अपामार्ग-आक-दूर्वा समिधा में पाँच से दस हजार तक का हवन होना चाहिए ।

'कलौ चतुर्गुणं प्रोक्तं' के अनुसार यदि शक्ति हो, तो निर्दिष्ट संख्या का चार गुना जप करना चाहिए । प्रत्येक प्रयोग में **'दीप-दान'** परमावश्यक है ।

'हवन' के पश्चात् 'तर्पण' करना होता है । वैसे तो तर्पण हवन का दशांश होता है, परन्तु कार्य की आवश्यकता के अनुसार हवन के अनुसार ही 'तर्पण' भी एक हजार से दस हजार तक किया जा सकता है । कामना - भेद से तर्पणीय जल में हवन - सम्बन्धी सामग्री को आंशिक रूप में मिश्रित कर सकते हैं ।

तर्पण-विधि—ताम्र-पात्र में कार्तवीर्यार्जुन-यन्त्र या **'फ्रों'** बीज लिखें । उसी पात्र में निम्न मन्त्र से तर्पण करें—**कार्तवीर्य-मूल-मन्त्र+कार्तवीर्यार्जुनं तर्पयामि नमः** ।

'अभिषेक' के सम्बन्ध में दो मत हैं—(१) देवता का मार्जन, (२) यजमान का मार्जन। दोनों के मन्त्र निम्न प्रकार हैं—१. **कार्तवीर्यार्जुन-मूल-मन्त्र+कार्तवीर्यार्जुनं अभिषिञ्चामि। २. कार्तवीर्यार्जुन-मूल-मन्त्र+आत्मानं अमुकं वा अभिषिञ्चामि।**

'कार्तवीर्यार्जुन मन्त्र-प्रयोग' में **यजमान के मार्जन/अभिषेक की एक विशिष्ट विधि** निम्न प्रकार है—शुद्ध भूमि पर गोबर/पञ्चगव्य का लेपन/प्रोक्षण करें। उस पर अष्ट-गन्धीय लाल-चन्दन से कार्तवीर्यार्जुन यन्त्र बनावें। उस यन्त्र पर विधि-पूर्वक कलश स्थापित करें। कलश में कार्तवीर्यार्जुन का आवाहन कर यथा-विधि पूजन करें। पूर्वोक्त विधि के अनुसार दीप जलावें। बाँएँ हाथ से कुम्भ को स्पर्श करते हुए मूल-मन्त्र की दस माला (या कामना के अनुसार संख्या में) जप करें। इस अभिमन्त्रित जल से स्वयं तथा स्व-जनों का अभिषेक करें। ऐसा करने से पुत्र, यश, आयु, स्व-जन-प्रेम, वाक्-सिद्धि, गृहस्थ-सुख की प्राप्ति होती है तथा जटिल रोगों से मुक्ति मिलती है। मारण/कृत्यादि (या मूठ आदि मारक) अभिचार-कर्म से प्रभावित तथा पीड़ित व्यक्ति को उस प्रभाव से मुक्ति मिलती है।

श्रीकार्तवीर्यार्जुन-मन्त्र के जपानुष्ठान में आसन आदि **लाल रङ्ग के होते हैं। शङ्ख की माला** सर्वोत्तम, रक्त-चन्दन की मध्यम तथा अन्य मालाएँ भी ठीक मानी गई हैं। अनुष्ठान की सफलता हेतु मूल-मन्त्र के आवश्यक जप के साथ **दस सहस्र गायत्री जप (यज्ञोपवीत संस्कार** के समय प्राप्त) आवश्यक बताया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि जिस देवता के मन्त्र का जप किया जाए, उसी देवता की 'गायत्री' का दस सहस्र जप होना चाहिए। अतः हम यहाँ **श्रीकार्तवीर्यार्जुन गायत्री** भी दे रहे हैं—

ॐ कार्तवीर्याय विद्महे महा-वीर्याय धीमहि तन्नोऽर्जुनः प्रचोदयात्।

—**पं० ऋषिकुमार चक्रपाणि**

(१८)

सर्वाभीष्ट–पूरक सूर्य यन्त्र

१. अर्क (मदार) दुग्ध, केशर, गोरोचन और अर्क-पत्रों का रस—मिलाकर 'द्रव्य' तैयार करे। २. शुक्ल पक्ष के रवि-वार को, जब कृत्तिका नक्षत्र हो, तब अर्क (मदार) की लेखनी से, 'भोज-पत्र' पर उपर्युक्त द्रव्य से निम्न **'सूर्य-यन्त्र'** को लिखे।

२. यन्त्र लिखने के बाद अष्ट-गन्ध से 'यन्त्र' को १०८ बार निम्न 'मन्त्र' द्वारा धूपित करे—ॐ ह्रीं हंसः घृणि सूर्याय नमः । ४. फिर स्वर्ण या ताम्र के 'तावीज' में उक्त 'मन्त्र' को रखकर, लाल रेशमी धागे से दाईं भुजा में पहने । ५. इस प्रकार 'यन्त्र'-धारण करने से सभी कार्य सम्पन्न होते हैं । सुख-सम्पत्ति मिलती है । दुःख - बाधाएँ दूर होती हैं । **'सूर्य-यन्त्र'** निम्न प्रकार है—

६	३२	३	३४	३५	१
७	११	२७	२८	८	३०
१९	१४	१६	१५	२३	२४
१८	२०	२२	२१	१७	१३
२५	२९	१०	९	२६	१२
३६	५	३३	४	२	३१

(१९)

नेत्र-रोग-नाशक बत्तीसा यन्त्र

८	१५	२	७
६	३	१२	११
१४	९	८	१
४	५	१०	१३

१. प्रति-दिन प्रातः हल्दी को गङ्गा-जल में घिसकर अनार की कलम से कांस्य-पत्र में उपर्युक्त बत्तीसा यन्त्र को लिखे । २. इस प्रकार लिखे गए 'बत्तीसा यन्त्र' के मध्य में घृत से पूर्ण, ताम्र का चार बत्तियोंवाला 'दीपक' स्थापित करे । ३. 'दीपक' में चार बत्तियाँ, चारों कोनों की ओर जलती हुई स्थापित करे । ४. तब गन्ध, अक्षत-पुष्प से 'यन्त्र' का पूजन करे । ५. फिर पूर्व की ओर मुख कर बैठे और 'ॐ ह्रीं हंसः' मन्त्र का जप करे । जप - संख्या १२०० और जप-माला हल्दी की होनी चाहिए ।

(२०)

सर्वारिष्ट-निवारण स्तोत्र

ॐ गं गणपतये नमः । सर्व-विघ्न-विनाशनाय, सर्वारिष्ट-निवारणाय, सर्व-सौख्य-प्रदाय, बालानां बुद्धि-प्रदाय, नाना-प्रकार-धन-वाहन-भूमि-प्रदाय, मनोवाञ्छित-फल-प्रदाय रक्षां कुरु कुरु स्वाहा ॥

ॐ गुरवे नमः, ॐ श्रीकृष्णाय नमः, ॐ बलभद्राय नमः, ॐ श्रीरामाय नमः, ॐ हनुमते नमः, ॐ शिवाय नमः, ॐ जगन्नाथाय नमः, ॐ बदरीनारायणाय नमः, ॐ श्री-दुर्गा-देव्यै नमः ॥

ॐ सूर्याय नमः, ॐ चन्द्राय नमः, ॐ भौमाय नमः, ॐ बुधाय नमः, ॐ गुरवे नमः, ॐ भृगवे नमः, ॐ शनिश्चराय नमः, ॐ राहवे नमः, ॐ पुच्छानयकाय नमः, ॐ नव-ग्रह ! रक्षां कुरु कुरु नमः ॥

ॐ मन्येवरं हरिहरादय एव दृष्ट्वा द्रष्टेषु येषु हृदयस्थं त्वयं तोषमेति विविक्षते न भवता भुवि येन नान्य कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि । ॐ नमो मणि-भद्रे ! जय-विजय-पराजिते ! भद्रे ! लभ्यं कुरु कुरु स्वाहा ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्-सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॥ सर्व-विघ्नं शान्तं कुरु कुरु स्वाहा ॥

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं श्रीबटुक - भैरवाय आपदुद्धारणाय महान्-श्याम-स्वरूपाय दीर्घारिष्ट-विनाशाय नाना-प्रकार-भोग-प्रदाय मम (यजमानस्य वा) सर्वारिष्टं हन हन, पच पच, हर हर, कच कच, राज-द्वारे जयं कुरु कुरु, व्यवहारे लाभं वृद्धिं वृद्धिं, रणे शत्रून् विनाशय विनाशय, पूर्णा आयुः कुरु कुरु, स्त्री-प्राप्तिं कुरु कुरु, हुम् फट् स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः । ॐ नमो भगवते, विश्व - मूर्तये, नारायणाय, श्रीपुरुषोत्तमाय । रक्ष रक्ष, युग्मदधिकं प्रत्यक्षं परोक्षं वा अजीर्णं पच-पच, विश्व-मूर्तिकान् हन-हन, ऐकाह्निकं द्वाह्निकं त्र्याह्निकं चतुरह्निकं ज्वरं नाशय-नाशय, चतुरग्नि-वातान् अष्टादश-क्षयान् रोगान्, अष्टादश-कुष्ठान् हन-हन, सर्व-दोषं भञ्जय-भञ्जय, तत्-सर्वं नाशय-नाशय, शोषय-शोषय, आकर्षय-आकर्षय, मम शत्रुं मारय-मारय, उच्चाटय-उच्चाटय, विद्वेषय-विद्वेषय, स्तम्भय-स्तम्भय, निवारय-निवारय, विघ्नं हन-हन, दह-दह, पच-पच, मथ-मथ, विध्वंसय-विध्वंसय, विद्रावय-विद्रावय, चक्रं गृहीत्वा शीघ्रमागच्छागच्छ, चक्रेण हन -

हन, पर-विद्यां छेदय-छेदय, चौरासी-चेटकान् विस्फोटान् नाशय-नाशय, वात-शुष्क-दृष्टि-सर्प-सिंह-व्याघ्र-द्विपद-चतुष्पद अपरे बाह्यं ताराभिः भव्यन्तरिक्षं अन्यान्य-व्यापि-केचिद् देश-काल-स्थान सर्वान् हन-हन, विद्युन्मेघ-नदी-पर्वत, अष्ट-व्याधि, सर्व-स्थानानि, रात्रि-दिनं, चौरान् वशय-वशय, सर्वोपद्रव - नाशनाय, पर-सैन्यं विदारय - विदारय, पर - चक्रं निवारय - निवारय, दह - दह, रक्षां कुरु - कुरु, ॐ नमो भगवते, ॐ नमो नारायणाय, हुं फट् स्वाहा ।।

ठः ठः ॐ ह्रीं ह्रीं । ॐ ह्रीं क्लीं भुवनेश्वर्याः श्रीं ॐ भैरवाय नमः । हरि ॐ उच्छिष्ट-देव्यै नमः । डाकिनी-सुमुखी-देव्यै, महा-पिशाचिनी ॐ ऐं ठः ठः । ॐ चक्रिण्या अहं रक्षां कुरु-कुरु, सर्व-व्याधि-हरणी-देव्यै नमो नमः । सर्व-प्रकार-बाधा-शमनमरिष्ट-निवारणं कुरु-कुरु फट् । श्रीं ॐ कुब्जिका, देव्यै ह्रीं ठः स्वाहा ।।

शीघ्रमरिष्ट-निवारणं कुरु-कुरु देवी शाम्बरी क्रीं ठः स्वाहा ।।

शारिका-भेदा महा-माया पूर्णं आयुः कुरु । हेमवती मूलं रक्षा कुरु । चामुण्डायै देव्यै शीघ्रं विघ्नं सर्वं वायु-कफ-पित्त-रक्षां कुरु । मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र-कवच-ग्रह-पीडा नडतर, पूर्व-जन्म-दोष नडतर, यस्य जन्म-दोष नडतर, मातृ-दोष नडतर, पितृ-दोष नडतर, मारण-मोहन-उच्चाटन-वशीकरण-स्तम्भन-उन्मूलनं भूत-प्रेत-पिशाच-जात-जादू-टोना-शमनं कुरु । सन्ति सरस्वत्यै कण्ठिका - देव्यै गल - विस्फोटकायै विक्षिप्त - शमनं महान् ज्वर - क्षयं कुरु स्वाहा ।।

सर्व-सामग्री-भोगं सप्त-दिवसं देहि-देहि, रक्षां कुरु, क्षण - क्षण अरिष्ट - निवारणं, दिवस-प्रति-दिवस दुःख-हरणं मङ्गल-करणं कार्य-सिद्धि कुरु-कुरु । हरि ॐ श्रीरामचन्द्राय नमः । हरि ॐ भूर्भुवः स्वः चन्द्र-तारा-नव-ग्रह-शेष-नाग-पृथ्वी-देव्यै आकाशस्य सर्वारिष्ट-निवारणं कुरु-कुरु स्वाहा ।।

१—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं बटुक-भैरवाय आपदुद्धारणाय सर्व-विघ्न-निवारणाय मम रक्षां कुरु-कुरु स्वाहा ।।

२—ॐ ऐं ह्रीं क्लीं श्रीवासुदेवाय नमः, बटुक-भैरवाय आपदुद्धारणाय मम रक्षां कुरु-कुरु स्वाहा ।

३—ॐ ऐं ह्रीं क्लीं श्रीविष्णु-भगवान् मम अपराध-क्षमा कुरु-कुरु, सर्व-विघ्नं विनाशय, मम कामना पूर्णं कुरु-कुरु स्वाहा ।।

४—ॐ ऐं ह्रीं क्लीं श्रीबटुक-भैरवाय आपदुद्धारणाय सर्व-विघ्न-निवारणाय मम रक्षां कुरु-कुरु स्वाहा ।।

५—ॐ ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं ॐ श्रीदुर्गा-देवी रुद्राणी-सहिता, रुद्र-देवता काल - भैरव सह, बटुक-भैरवाय, हनुमान सह मकर-ध्वजाय, आपदुद्धारणाय मम सर्व-दोष-क्षमाय कुरु-कुरु सकल विघ्न-विनाशाय मम शुभ-माङ्गलिक-कार्य-सिद्धि कुरु-कुरु स्वाहा ।।

एष विद्या-माहात्म्यं च, पुरा मया प्रोक्तं ध्रुवं । शत-क्रतो तु हन्त्येतान्, सर्वांश्च बलि-दानवाः ।१
य पुमान् पठते नित्यं, एतत् स्तोत्रं नित्यात्मना । तस्य सर्वान् हि सन्ति, यत्र दृष्टि-गतं विषं ।।२
अन्य दृष्टि-विषं चैव, न देयं संक्रमे ध्रुवम् । संग्रामे धारयेत्यम्बे, उत्पाता च विसंशयः ।।३
सौभाग्यं जायते तस्य, परमं नात्र संशयः । द्रुतं सद्यं जयस्तस्य, विघ्नस्तस्य न जायते ।।४
किमत्र बहुनोक्तेन, सर्व-सौभाग्य-सम्पदा । लभते नात्र सन्देहो, नान्यथा वचनं भवेत् ।।५
ग्रहीतो यदि वा यत्नं, बालानां विविधैरपि । शीतं समुष्णतां याति, उष्णः शीत-मयो भवेत् ।।६
नान्यथा श्रुतये विद्या, पठति कथितं मया । भोज-पत्रे लिखेद् यन्त्रं, गोरोचन-मयेन च ।।७
इमां विद्यां शिरो बध्वा, सर्व-रक्षा करोतु मे । पुरुषस्याथवा नारी, हस्ते बध्वा विचक्षणः ।।८
विद्रवन्ति प्रणश्यन्ति, धर्मस्तिष्ठति नित्यशः । सर्व-शत्रुरधो यान्ति, शीघ्रं ते च पलायनम् ।।९

'श्रीभृगु-संहिता' के **'सर्वारिष्ट-निवारण-खण्ड'** में इस अनुभूत स्तोत्र के ४० पाठ करने की विधि बताई गई है । इस पाठ के फल-स्वरूप पुत्र-हीन को पुत्र-प्राप्ति होती है और जिसका विवाह नहीं होता, उसका विवाह हो जाता है । इसके अतिरिक्त इस स्तोत्र के पाठ के प्रभाव से सभी प्रकार के दोषों—ज्वर, क्षय, कुष्ठ, वात-पित्त-कफ की पीड़ाओं और भूतादिक सभी बाधाओं का निवारण होता है ।

इस स्तोत्र का पाठ यदि स्वयं अपने लिए करना हो, तो **'मम'** या **'मम स-कुटुम्बस्य'** शब्द का उच्चारण करे और यदि किसी अन्य (यजमान) के लिए पाठ करना हो, तो स्तोत्र में जहाँ **'यजमान'** - शब्द छपा है, वहाँ उसके नाम, गोत्रादि का उच्चारण करना चाहिए ।

किसी भी देवता या देवी की 'प्रतिमा' या 'यन्त्र' के सामने बैठकर धूप - दीपादि से उसका पूजन कर इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए । विशेष लाभ की इच्छा हो, तो **'स्वाहा'** और **'नमः'** का उच्चारण करते हुए **'घृत-मिश्रित गुग्गुल'** से आहुतियाँ दे सकते हैं । ऐसा करने से अभीष्ट कामना की पूर्ति शीघ्र और अवश्य होती है । इसके पाठ से

निर्धन को धन और बेकार को जोविका का साधन--नौकरी, व्यापार आदि की सुविधा प्राप्त होती है। अनुभूत है। **—श्री जे० एल० भरद्वाज, अहमदाबाद (गुजरात)**

(२१)

त्रैलोक्य-विजय श्रीनृसिंह कवचम्

।। पूर्व-पीठिका : श्री नारद उवाच ।।

इन्द्रादि - देव - वृन्देश ! ईश्वर, जगत्-पते ! महा-विष्णोर्नृसिंहस्य, कवचं ब्रूहि मे प्रभो !
यस्य प्रपठनाद् विद्वांस्त्रैलोक्य-विजयी भवेत् ।।१

।। श्री प्रजापतिरुवाच ।।

शृणु नारद ! वक्ष्यामि, पुत्र-श्रेष्ठ, तपो-धन ! कवचं नृसिंहस्य तु, त्रैलोक्य-विजयाभिधम् ।।
यस्य पठनाद् वाग्मी, त्रैलोक्य-विजयी भवेत् । स्रष्टाऽहं जगतां वत्स ! पठनाद् धारणाद् यतः ।।
लक्ष्मीर्जगत्-त्रयं पाति, संहर्ता च महेश्वरः । पठनाद् धारणाद् देवाः, बभूवुश्च दिगीश्वराः ।।
ब्रह्म-मन्त्र-मयं वक्ष्ये, भ्रान्त्यादि-विनिकारकं । यस्य प्रसादाद् दुर्वासास्त्रैलोक्य-विजयी भवेत् ।।
पठनाद् धारणाद् यस्य, शास्ता च क्रोध-भैरवः ।।५
त्रैलोक्य-विजयस्यास्य, कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री, नृसिंहो देवता विभुः ।
क्ष्रौं वीजं, हुं शक्तिः, फट् कीलकं, ममाभीष्ट-सिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।।

।। मूल पाठ ।।

विनियोग--ॐ अस्य त्रैलोक्य-विजय-नाम श्रीनृसिंह-कवचस्य श्रीप्रजापतिः ऋषिः । गायत्री छन्दः । श्रीनृसिंहः देवता । क्ष्रौं वीजं । हुं शक्तिः । फट् कीलकं । ममाभीष्ट-सिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास--श्रीप्रजापति-ऋषये नमः शिरसि । गायत्री-छन्दसे नमः मुखे । श्रीनृसिंह-देवतायै नमः हृदि । क्ष्रौं वीजाय नमः गुह्ये । हुं शक्तये नमः नाभौ । फट् कीलकाय नमः पादयोः । ममाभीष्ट-सिद्धयर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

ॐ उग्र-वीरं महा-विष्णुं, ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् । नृसिंहं भीषणं भद्रं, मृत्यु-मृत्युं नमाम्यहम् ।।१
क्ष्रौं वीजं मे शिरः पातु, चन्द्र-वर्णो महा-मनुः । कण्ठं पातु ध्रुवं क्ष्रौं हृद्, भगवते चक्षुषी मे ।
नरसिंहाय च ज्वाला-मालिने पातु कर्णकम् ।।२

उ	ज्व	नृ	मृ
ग्रं	ल	सिं	त्यु
वी	न्तं	हं	मृ
रं	स	भी	त्युं
म	र्व	ष	न
हा	तो	णं	मा
वि	मु	भ	म्य
ष्णुं	खं	द्रं	हं

'पूर्व-पीठिका' और **'फल-श्रुति'** के अनुसार उक्त **'श्रीनृसिंह कवच'** का १०८ पाठ करने से इसका **'पुरश्चरण'** होता है। दशांश अर्थात् ११ पाठ द्वारा **'हवन'** और एक-एक पाठ द्वारा **'तर्पण'**, **'मार्जन'** कर एक ब्राह्मण को भोजन कराने से यह 'कवच-स्तोत्र' सिद्ध हो जाता है। तब इसका प्रयोग कर विविध प्रकार की कामनाओं की पूर्ति की जा सकती है। कामनाओं का उल्लेख 'पूर्व-पीठिका' और 'फल-श्रुति' में किया गया है। यहाँ चित्रित 'यन्त्र' को भोज-पत्र पर लिखकर 'ताबीज' के रूप में कण्ठ या भुजा में धारण करने से अनेक कामनाओं की पूर्ति होती है। विशेष मार्ग - दर्शन अपने गुरुदेव से प्राप्त कर लेना चाहिए।

–प० कृष्णानन्द मिश्र वैद्य, ग्राम–ककरा, प्रयाग

दीप्त-दंष्ट्राय च तथाऽग्नि-नेत्राय च नासिकां। सर्व-रक्षोघ्नाय तथा, सर्व-भूत-हिताय च ।।३
सर्व-ज्वर-विनाशाय, दह-दह पद-द्वयम्। रक्ष-रक्ष वर्म-मन्त्रः, स्वाहा पातु मुखं मम ।।४
ॐ रामचन्द्राय नमः, पातु च हृदयं मम। क्लीं पायात् पार्श्व-युग्मं च, तारो नमः पदं ततः ।।५
नारायणाय नाभिं च, आं ह्रीं क्रों क्ष्रौं चैव हुं फट्। षडक्षरः कटिं पातु, ॐ नमो भगवतेऽयम् ।।६
वासुदेवाय च पृष्ठं, क्लीं कृष्णाय ऊरु-द्वयं। क्लीं कृष्णाय सदा पातु, जानुनी च मनूत्तमः ।।७
क्लौंग्लौंक्लीं श्यामलाङ्गाय, नमः पायात् पद-द्वयं। क्ष्रौं नृसिंहाय क्ष्रौं चैव, सर्वाङ्गे मे सदाऽवतु।

।। फल-श्रुति ।।

इति ते कथितं वत्स ! सर्व-मन्त्रौघ-विग्रहं। तव स्नेहान्मया ख्यातं, प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ।।
गुरु-पूजां विधायाथ, गृह्णीयात् कवचं ततः। सर्व-पुण्य-युतो भूत्वा, सर्व-सिद्धि-युतो भवेत् ।।
शतमष्टोत्तरं चास्य, पुरश्चर्या-विधिः स्मृता। हवनादीन् दशांशेन, कृत्वा साधक-सत्तमः ।।
ततस्तु सिद्ध-कवचः, पुण्यात्मा मदनोपमः। स्पर्द्धामूद्धूय भवने, लक्ष्मीर्वाणी वसेत् ततः ।।
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा, मूलेनैव पठेत् सकृत्। अपि वर्ष-सहस्राणां, पूजायां फलमाप्नुयात् ।।
भूर्जे विलिख्य गुटिकां, स्वर्णस्थां धारयेद् यदि। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ, नरसिंहो भवेत् स्वयम्।
योषिद्-वाम-भुजे चैव, पुरुषो दक्षिण-करे। बिभृयात् कवचं पुण्यं, सर्व-सिद्धि-युतो भवेत् ।।
काक-वन्ध्या च या नारी, मृत-वत्सा च या भवेत्। जन्म-वन्ध्या नष्ट-पुत्रा, बहु-पुत्र-वती भवेत्।
कवचस्य प्रसादेन, जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। त्रैलोक्यं क्षोभयेत् सदा, त्रैलोक्य-विजयी भवेत् ।।
भूत-प्रेत-पिशाचाश्च, राक्षसा दानवाश्च ये। तं दृष्ट्वा प्रपलायन्ते, देशाद् देशान्तरे ध्रुवम् ।।

यस्मिन् गृहे च कवचं, ग्रामे वा यदि तिष्ठति । तद् देशं तु परित्यज्य, प्रयान्ति ह्यति-दूरतः ।।

।। इति ब्रह्म-संहितायां त्रैलोक्य-विजयं नाम नृसिंह-कवचम् ।।

(२२)

अत्यधिक कष्ट-शान्ति के लिए

श्रीवन-दुर्गा मन्त्र-विधान

सङ्कल्प—देश-कालौ स्मृत्वा अमुक-गोत्रोऽमुक-शर्माऽहं अमुक-कार्य-सिद्धयर्थे (मनोऽभिलषित-कार्य-सिद्धयर्थे वा) श्रीवन-दुर्गा-मन्त्रस्य एकादश-शत-संख्यक-जपं करिष्ये ।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीवन-दुर्गा-देवता-मन्त्रस्य श्रीआरण्यक ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । श्रीवन-दुर्गा देवता । ॐ वीजं । स्वाहा शक्तिः । सङ्कल्पोद्दिष्ट - कार्य - सिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीआरण्यक-ऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे । श्रीवन-दुर्गा-देवतायै नमः हृदि । ॐ वीजाय नमो गुह्ये । स्वाहा-शक्तये नमः पादयोः । सङ्कल्पोद्दिष्ट-कार्य-सिद्धयर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

कर-न्यास—उत्तिष्ठ पुरुषि अंगुष्ठाभ्यां नमः । किं स्वपिषि तर्जनीभ्यां नमः । भयं मे समुपस्थितं मध्यमाभ्यां नमः । यदि शक्यमशक्यं हुं अनामिकाभ्यां नमः । तन्मे भगवति कनिष्ठिकाभ्यां नमः । शमय स्वाहा करतल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः ।

अङ्ग-न्यास—उत्तिष्ठ पुरुषि हृदयाय नमः । किं स्वपिषि शिरसे स्वाहा । भयं मे समुपस्थितं शिखायै वषट् । यदि शक्यमशक्यं हुं नेत्र-त्रयाय वषट् । तन्मे भगवति कवचाय हुं । शमय स्वाहा अस्त्राय फट् ।

ध्यान—

सौवर्णासन-संस्थितां त्रिनयनां सौदामिनी-सन्निभाम् ।
शङ्खं चक्र-वराभयानि दधतीमिन्दोः कलां विभ्रतीम् ।।
ग्रैवेयाङ्गद - हार - कुण्डल-धरामाखण्डलाद्यैः स्तुताम् ।
ध्यायेद् विन्ध्य-निवासिनीं शशि-मुखीं पार्श्वस्थ पञ्चाननाम् ।।

मन्त्र—

ॐ उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितम् ।
यदि शक्यमशक्यं हुं तन्मे भगवति ! शमय स्वाहा ।।

विधि—प्रतिदिन ग्यारह माला जप २१ दिनों तक करे । यदि कार्य न हो, तो ४१ दिन तक जप करना चाहिए ।

—पं० रामराज पाण्डेय, रो

(२३)

मनोवांछित वर-प्राप्ति प्रयोग

भगवती सीता ने गौरी की उपासना निम्न मन्त्र द्वारा की थी, जिसके फल-स्वरूप उनका विवाह भगवान् श्री राम से हुआ। अतः कुमारी कन्याओं को इसका पाठ कर मनो-वाञ्छित वर पाने का प्रयास अवश्य करना चाहिए।

ॐ श्रीदुर्गायै सर्व-विघ्न-विनाशिन्यै नमः स्वाहा। सर्व-मङ्गल-मङ्गल्ये, सर्व-काम-प्रदे शिवे ! देहि मे वाञ्छितं नित्यं, नमस्ते शङ्कर-प्रिये !।। दुर्गे शिवेऽभये माये, नारायणि सनातनि ! जपे मे मङ्गले देहि, नमस्ते सर्व-मङ्गले ।।

विधि—प्रतिदिन माँ गौरी का स्मरण-पूजन कर ११ पाठ करे।

(२४)

बन्दी-मोचन-मन्त्र-प्रयोग

विनियोग—ॐ अस्य बन्दी-मोचन-स्तोत्र-मन्त्रस्य श्रीकण्व ऋषिः। त्रिष्टुप् छन्दः। श्रीबन्दी-देवी देवता। ह्रीँ वीजं। हूं कीलकं। मम बन्दी-मोचनार्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि - न्यास—श्रीकण्व - ऋषये नमः शिरसि। त्रिष्टुप् - छन्दसे नमः मुखे। श्रीबन्दी-देवी-देवतायै नमः हृदि। ह्रीं वीजाय नमः गुह्ये। हूं कीलकाय नमः पादयोः। मम बन्दी-मोचनार्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

मन्त्र—ॐ ह्रीं ह्रूं बन्दी-देव्यै नमः। अष्टोत्तर-शतं जपः।

बन्दी देव्यै नमस्कृत्य, बरदाभय-शोभिनीम्। तदाज्ञां शरणं गच्छत्, शीघ्रं मोचं ददातु मे ।।

बन्दी कमल-पत्राक्षी, लौह-शृङ्खला-भञ्जिनीम्। प्रसादं कुरु मे देवि ! शीघ्रं मोचं ददातु मे ।।

त्वं बन्दी त्वं महा-माया, त्वं दुर्गा त्वं सरस्वती। त्वं देवी रजनी चैव, शीघ्रं मोचं ददातु मे ।।

संसार-तारिणी बन्दी, सर्व-काम-प्रदायिनी। सर्व-लोकेश्वरी देवी, शीघ्रं मोचं ददातु मे ।।

त्वं ह्रीं त्वमीश्वरी देवि ब्रह्माणी ब्रह्म-वादिनी। त्वं वै कल्प-क्षयं कर्त्री, शीघ्रं मोचं ददातु मे ।।

देवी धात्री धरित्री च, धर्म-शास्त्रार्थ-भाषिणी, दुःश्वासाम्ब-रागिणी देवि शीघ्रं मोचं ददातु मे।

नमोऽस्तु ते महा-लक्ष्मी, रत्न-कुण्डल-भूषिता। शिवस्यार्धाङ्गिनी चैव, शीघ्रं मोचं ददातु मे ।।

नमस्कृत्य महा-दुर्गां,भयात्तु तारिणीं शिवां । महा-दुःख-हरां चैव, शीघ्रं मोचं ददातु मे ।।
इदं स्तोत्रं महा-पुण्यं, यः पठेन्नित्यमेव च । सर्व-बन्ध-विनिर्मुक्तो, मोक्षं च लभते क्षणात् ।।

हवन-विधि—कमल-गट्टा, गाय का घी, शुद्ध शहद, मिश्री, हल्दी एवं लाल चन्दन के चूर्ण को मिश्रित कर उससे जप-संख्या का दशांश हवन करना चाहिए ।

(२५)

सिद्ध शूलिनी दुर्गा-स्तुति

दुःख दुशासन पत चीर हाथ ले, मो सँग करत अँधेर ।
कपटी कुटिल मैं दास तिहारो, तुझे सुनाऊँ टेर ।। मैय्या०।।१
बुद्धि चकित थकित भए गाता, तुम ही भवानी मम दुःख-त्राता ।।
चरण शरण तव छाँड़ि कित जाऊँ, सब जीवन दुःख निवेड़ ।। मैय्या०।।२
भक्ति-हीन शक्ति के नैना, तुझ बिन तड़पत हैं दिन-रैना ।।
लाज तिहारे हाथ सौंप दइ, दे दर्शन चढ़ शेर ।। मैय्या०।।३

विधि—उपर्युक्त रचना '**शूलिनी दुर्गा**' की स्तुति है । विशेष सङ्कट-काल में भक्ति-पूर्वक सतत गायन करते रहने से तीन रात्रि में '**सङ्कट' नष्ट** होते हैं ।

भगवती षोडशी (श्री श्रीविद्या) का ध्यान कर, इस स्तुति की तीन आवृत्ति करते हुए स्तवन करने पर सद्यः '**अर्थ-प्राप्ति**' ३ घण्टे में होती है ।

एक वर्ष तक नियमित रूप से इस स्तुति का गायन करने पर, माँ स्वयं स्वप्न में '**मन्त्र-दीक्षा**' प्रदान करती हैं ।

'**नव-रात्र**' में नित्य **मध्य-रात्रि** में श्रद्धा-पूर्वक इस स्तुति की १६ आवृत्ति गायन करने से ५ रात्रि के अन्दर स्वप्न में **'माँ' का साक्षात्कार** होता है ।

प्रातः एवं सायं-काल नित्य नियमित रूप से भक्ति-पूर्वक '**भैरवी रागिनी**' में इस स्तुति का गायन करने से **आत्म-साक्षात्कार** होता है ।

—योगि-राज श्रीशक्तिदत्त शिवेन्द्राचार्य

(२६)

रोग एवं अपमृत्यु-निवारक प्रयोग

[१] किसी प्राचीन शिवालय में जाकर गणेश जी की पूजा ॐ **गं गणपतये नमः** मन्त्र से षोडशोपचार से करे। तदनन्तर **ॐ नमः शिवाय** मन्त्र से महा-देव जी की पूजा कर हाथ में जल लेकर विनियोग पढ़े—

[२] **विनियोग**—ॐ अस्य श्री अमृत-मृत्युञ्जय-मन्त्रस्य श्री कहोल ऋषिः, विराट् छन्दः, अमृत-मृत्युञ्जय सदा-शिवो देवता, अमुक गोत्रोत्पन्नस्य अमुक-शर्मणो मम समस्त-रोग-निरसन-पूर्वकं अप-मृत्यु-निवारणार्थे जपे विनियोगः। **यह पढ़कर जल छोड़ दे।** फिर ऋष्यादि, कर और षडङ्ग-न्यास-पूर्वक ध्यान करे—

ऋष्यादि-न्यास—श्रीकहोल - ऋषये नमः शिरसि। विराट्-छन्दसे नमः मुखे। अमृत-मृत्युञ्जय-सदाशिव-देवतायै नमः हृदि। मम समस्त - रोग-निरसन-पूर्वकं अपमृत्यु-निवारणार्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

[३] **कर-न्यास**—ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः। जूं तर्जनीभ्यां नमः। सः मध्यमाभ्यां नमः। मां अनामिकाभ्यां नमः। पालय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। पालय कर - तल - कर-पृष्ठाभ्यां नमः।

षडङ्ग-न्यास—ॐ हृदयाय नमः। जूं शिरसे स्वाहा। सः शिखायै वषट्। मां कवचाय हुम्। पालय नेत्र-त्रयाय वौषट्। पालय अस्त्राय फट्।

ध्यान—स्फुटित-नलिन-संस्थं, मौलि-बद्धेन्दु-रेखा-स्रवदमृत-रसार्द्रं चन्द्र-वन्ह्यर्क-नेत्रम्।
स्व-कर-लसित-मुद्रा-पाश-वेदाक्ष-मालं, स्फटिक-रजत-मुक्ता-गौरमीशं नमामि॥

[४] सवा लाख मन्त्र-जप के लिए ५ हजार जप प्रति-दिन करना चाहिए। जप के बाद न्यास आदि करके पुनः ध्यान करे। फिर जल लेकर—'**अनेन-मत् कृतेन जपेन श्री-अमृत-मृत्युञ्जयः प्रीयताम्**' कहकर जल छोड़ दे।

[५] 'जप' का दशांश हवनादिक करे। 'हवन' हेतु 'तिलाज्य' में 'गिलोय' भी डालनी चाहिए। हवनादि न कर सकने पर '**चतुर्गुणित जप**' करने से अनुष्ठान पूर्ण होता है एवं **आरोग्यता मिलती है, अप-मृत्यु-निवारण** होता है।

—पं० लक्ष्मणदत्त शास्त्री चतुर्वेद, मथुरा (उ० प्र०)

मन्त्र-साधना के जिज्ञासुओं के लिये प्रामाणिक शोध-पूर्ण ग्रन्थ

मन्त्र-कोष

मन्त्रों का शोधात्मक संग्रह

[तीन खण्डों में]

• पञ्चायतन खण्ड •

• दश महा-विद्या खण्ड

• विविध मन्त्र संग्रह •

• वर्ण-बीज-कोष •

मूल्य ५५); सजिल्द मूल्य ६५)

रजि० सं० ३२९८१/५७ रजि०सं० ए०डी० ९६
सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्रीऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, प्रयाग-२११ ००६

पञ्च-तीर्थ में स्नान

गंगा अन्य नदियों की भाँति एक साधारण नदी नहीं है। गंगा का जल मात्र पानी नहीं समझा जाता। वह साक्षात् अमृत है। यह गंगा देवी या सुर-सरि है। इसमें दैविक शक्ति है। अतः इसके दर्शन, स्पर्शन से चित्त पवित्र व शान्त होकर, यदि पाप नष्ट हो जाते हैं, तो इसमें क्या आश्चर्य ! परन्तु इसके साथ-साथ आभ्यन्तर पञ्च-तीर्थ में स्नान करने से विशेष फल-सिद्धि होती है, जैसे कहा है :—

सत्य-तीर्थं क्षमा-तीर्थमिन्द्रिय-निग्रहः सर्व-भूत-दया-तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च।

अर्थात् १ सत्य, २ क्षमा, ३ इन्द्रिय - निग्रह, ४ सभी प्राणियों पर दया और ५ अहिंसा—ये पाँच तीर्थ हैं। इन पाँचों का पालन करते हुए जीवन बिताना चाहिए।

तीर्थ-यात्रा से क्या लाभ होता है ?

इस भू-मण्डल पर अनेक तीर्थ-स्थान हैं। जैसे—पुष्कर, कुरुक्षेत्र, प्रभाष-क्षेत्र, नैमिषारण्य, अर्बुदारण्य, मान-सरोवर, हरिद्वार, बद्रीनाथ, केदारनाथ, काशी, रामेश्वर, द्वारका, जगन्नाथपुरी, आदि-आदि। इन स्थानों का वातावरण अत्यन्त पवित्र और शुद्ध होता है। इन स्थानों में पर्वत-श्रेणियाँ, सरोवर तथा कल-कल मधुर शब्द करनेवाली नदियों का दृश्य मन के ताप को हरण कर एकदम शान्त बना देता है। इन तीर्थों में स्नान-दान करने से महान् फल होता है। इन स्थानों में जाकर देव-दर्शन एवं ऋषि, मुनि व संन्यासी महात्माओं के सत्संग के द्वारा ज्ञानोपदेश प्राप्त करना चाहिये। यहाँ अपने गृह-कार्यों को भुलाकर संयम-पूर्वक भगवान् का भजन करना चाहिये। क्योंकि कहा है—

अन्यस्थाने कृतं पापं तीर्थ-स्थाने विनश्यति। तीर्थ-स्थाने कृतं पापं वज्र-लेपो भविष्यति॥

अर्थात् अन्य स्थानों में किये गये पाप तो तीर्थ-स्थानों में जाकर नष्ट हो जाते हैं, पर तीर्थ-स्थान पर किये हुये पाप वज्र-लेप के समान अमिट बन जाते हैं।